दंश के दायरे

कविता प्रकाशन, बीकानेर

दंश के दायरे
सं.
मंजु गुप्ता

प्रकाशक कविता प्रकाशन तेलीवाडा बीकानेर 334001
मूल्य तीस रुपये मात्र
सस्करण प्रथम 1982
आवरण अवधेश कुमार
मुद्रक विकास आर्ट प्रिंटस दिल्ली 110032

DANSH KE DAYREY Dr Manju Gupta Price Rs 30 00

श्रद्धेय
डॉ० नामवर सिंहजी
को
सादर समर्पित

क्रम

अपनी ओर से

स्वातन्त्र्योत्तर राजस्थान के हिन्दी गद्य साहित्य मे हास्य-व्यंग्य पर शोध कार्य करने और विश्वविद्यालय से उपाधि प्राप्त करने पर मैंने अनुभव किया कि यहाँ व्यंग्य-लेखन की समृद्ध परम्परा होते हुए भी इस दिशा मे व्यवस्थित प्रयास नहीं हुए। लेखकों के मौलिक प्रयास परिपुष्ट होते हुए भी उनको समान दृष्टि के फोकस मे नहीं लिया गया जिससे उनकी उपलब्धियों का सही मूल्यांकन नहीं किया जा सका। व्यंग्य को मैं स्वतन्त्र विधा मानती हूँ इसलिए मेरा यह दायित्व हो जाता है कि इसे भावनाओं के धरातल पर ही अनुभव करते रहने की अपेक्षा व्यवस्थित कर सम्यक उपस्थित करूँ।

आज व्यंग्य लेखन छिछले हास्य की सृष्टि करने वाला साधारण लेखन मात्र न रहकर उत्तरदायित्वपूर्ण तथा साहित्यिक गरिमा से मण्डित होकर व्यवस्था के अन्तर्विरोधों को प्रकट करने का सशक्त माध्यम है। व्यंग्यकार की गहरी सम्वेदनशीलता और सुतीक्ष्ण कलात्मक अन्तःकरण का आधार व्यंग्य ही होता है।

व्यंग्य को मैंने स्वतन्त्र विधा माना है। इसी का एक रूप निबन्ध है जिनमे विनोदपूर्ण रोचकता और मनोविज्ञान का गहरा पुट रहता है तथा जो सड़ी गली व्यवस्था के प्रति छद्म आक्रोश का मुखौटा ओढ़े सुविधाभोगी तथाकथित बुद्धिजीवी पर निरन्तर चुभते और तीखे प्रहार करते हैं। ये निबन्ध पूर्णरूप से व्यंग्य विधा के दायरे मे समाकर व्यंग्य को निखरा और स्पष्ट रूप प्रदान करते हैं। राजस्थान मे श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का 'कछुआधर्म' और 'मारेसि मोहि कुठाऊँ' इस प्रकार के व्यंग्य की पहली कड़ी हैं जो केवल हँसी मजाक का विषय नहीं बल्कि जमकर विचार करने का विषय है। डा० कन्हैयालाल शर्मा, डा० त्रिभुवन चतुर्वेदी और उसके बाद अन्य व्यंग्यकारों ने इसको आगे बढ़ाया है।

यहाँ व्यंग्य को अन्य विधाओं से विशेषकर कहानी से अलग एक विधा मानने के लिए अन्तर जानना आवश्यक है।

आज कहानी, नयी कहानी अकहानी तथा सचेत कहानी के कई कटीले मार्गों

म होती हुई नये बोध के साथ मानव तथा उसके अनेक कार्यकलापों पर व्यंग्य करती प्रतीत होती है। वह एक निश्चित लक्ष्य या विशेष घटना के चारों ओर घूमती हुई मार्मिक अभिव्यंजना करती है तथा पाठक के सामने जीवन की परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब उपस्थित कर प्रत्यक्ष सम्वेदना जगाने का भरसक प्रयास करती है। कहानी का लक्ष्य केवल चरित्र, घटना या परिस्थिति विशेष पर पूर्ण प्रकाश डालना होता है। उसका क्षेत्र विशाल होता है अपनी बात का खुलासा करने के लिए कहानीकार दूसरी घटना प्रसंग या कभी कभी फ्लैश बैक म लिये चलता है। कभी वह पाठक को आदर्शों के रेशमी धरातल पर जो कभी यथार्थ के कठोर धरातल पर ला पटकता है।

पर व्यंग्यकार का प्रमुख लक्ष्य किसी भी विशिष्ट पात्र, घटना या क्षण को माध्यम बनाकर व्यंग्य करना ही होता है। वह शब्दों की [illegible] और तीखी मार म समाज की विसंगतियों का ऐसा उद्घाटन पटक कर रखता है कि रचना खुद ब खुद व्यंग्य लगने लगती है। किसी व्यंग्य रचना की सार्थकता भी तभी होती है जब वह साध्य की गहराई तक पहुँच कर अन्दर तक जमी चुभे। वह अपने पात्रों या घटनाओं का पूरी तरह निर्वाह करे यह आवश्यक नहीं, जहाँ उसका लक्ष्य पूरा हुआ कि रचना पूर्ण हो जाती है।

अपने सीमित क्षेत्र म चुनींदा शब्दों का विस्फोट ही व्यंग्य रचना के लिए काफी होता है। रचना का प्रयोजन भी तभी तक होता है जब तक कि व्यंग्यकार का मन्तव्य सिद्ध न हो जाय। श्री मधुकर गंगाधर के अनुसार—'व्यंग्य म वाणी रूपी छुरी लोहे की होती है और तेज धार से मांस काटती है। इससे क्षण भर के लिए आखेट भी कराह उठता है पर इसका निष्कर्ष हमेशा महत होता है।'[1] इसलिए व्यंग्यकार को कभी समाज सुधारक तो कभी उपदेशक का बाना पहनना पड़ता है। उसका मुख्य उद्देश्य कभी प्रत्यक्ष कहीं परोक्ष रूप से समाज म सुधार लाना होता है।

जबकि कहानीकार का उद्देश्य किसी भी विसंगति पर व्यंग्य करना नहीं होता। कभी कभी तो कहानी बिना किसी उद्देश्य के कोई मार्मिक क्षण लेकर ही जीती है। जो भोगा जा रहा है उसी का वर्णन कहानी म होता है। यह वर्णन जितना यथार्थ होगा, कहानी भी उतनी ही यथार्थ होगी।

व्यंग्य म भी यद्यपि यथार्थ स्थिति का चित्रण होता है पर व्यंग्यकार अपने मन म एक आदर्श की स्थापना करता है, आदर्श से तात्पर्य ऐसी स्वस्थ और शिष्ट कल्पना जो अनेक विषमताओं या दुर्व्यवस्थाओं को देखकर जन्म लेती है और जो यथार्थ होते हुए भी आदर्श की कसावट म कसी रहती है। इसी आदर्श

1 श्री मधुकर गंगाधर—जीवन और साहित्य—निराला पृष्ठ 76

का आश्रय लेकर व्यंग्यकार व्यंग्य की सृष्टि करता है। वह अपनी बात यथार्थ ठसके से नहीं वरन आदर्श की खट्टी मीठी चाशनी में सराबोर कर इस ढंग से कहता है कि—

रह गये मुँह फाड़े हम, कहने वाला कह गया—
फिर पूछ इस उसम हैं, हाय! फिर कहो क्या कह गया!'

अतः व्यंग्य को पूरी नावेबन्दी के साथ आदर्श और कलात्मक रूप देने के लिए बड़े संयम की आवश्यकता है।

कहानी में कहानीकार समस्याओं का निदान पाने के लिए विचारशील रहता है और चिन्तन मनन द्वारा उन समस्याओं के निदान तक नहीं पहुँच पाता तो कारण तक अवश्य पहुँच जाता है और इसीसे वह सन्तुष्ट हो जाता है—पर व्यंग्यकार को इतने से ही चैन नहीं मिलता। वह व्यंग्य का आश्रय लेकर उस बिन्दु को खोज निकालता है और तुरन्त आक्रमण की मुद्रा अपना कर दुर्बलता तथा विरूपता को समक्ष रख कर उनका पर्दाफाश करता है। अपनी व्यवहार-पटुता तथा शब्द कौशल से वह बड़े बड़े व्यक्तित्वों तक को बींध डालता है[1] तथा अपने संयमों में विचार तथा अकाट्य तर्क द्वारा वह अपनी बात कहता है।

डॉ० शेरजंग गर्ग के अनुसार— व्यंग्यकार की सम्पूर्ण शक्ति विचार मन्थन में ही लगी रहती है। वह विचार करता है और चीजों, व्यक्तियों तथा स्थितियों में से ऐसे बिन्दु निकाल लेता है उन्हें व्यंग्य में व्यक्त करता है जो मौजूद हैं मगर जिन्हें नहीं होना चाहिए था—या जो नहीं है मगर जिन्हें होना चाहिए था।[2]

व्यंग्यकार का विवेकशीलता, तटस्थता, निष्पक्षता के साथ अहं भाव को भी तिरोहित करने के लिए तैयार रहना पड़ता है। व्यंग्य करने के साथ उसे व्यंग्य सुनने के लिए भी तत्पर रहना पड़ता है पर कहानीकार यह कभी नहीं स्वीकारेगा कि उसे बीच चौराहे पर निवस्त्र किया जाय। जहाँ ऐसी परिस्थिति उत्पन्न भी होगी वह तुरन्त परिस्थितियों से समझौता कर लेगा। वहीं व्यंग्यकार किसी भी प्रकार का समझौता नहीं चाहता, वरन् वह समाज के ढुलमुल पुर्जों को बदल डालने तक के लिए प्रतिबद्ध रहता है।

कहानी में सीधे सरल, प्रचलित और आंचलिक शब्दों का प्रयोग अधिकतर पाया जाता है। व्यंग्य का प्रयोग कहानी में उतना ही होता है कि पाठक हल्की सी चुभन महसूस करे—बस—। पाठक पात्र घटना या मार्मिक प्रसंग में

1 देखिए —लौटना एक नेता का वापस घर को मुद्रा राक्षस—साप्ताहिक हिन्दुस्तान 21 जून से 27 जून 81

2 डा० शेरजंग गर्ग—व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न पृ० 107

इतना खो जाता है कि इतन हल्के व्यग्य को वह भूल जाता है।

व्यग्यकार अपना सम्पूण ध्यान अपने यग्य पर ही रखता है। वह कही वक्रोक्ति द्वारा तो कही वाग्वदग्ध्य द्वारा कही परिहासज य चुटकुला म तो कहीं अतिशयोक्ति तथा अपवप द्वारा अपन आलम्बन पर ऐसा तीव्र तथा प्रखर वाण छोडता है कि वह वाण साधारण पाठक की पकड के बाहर हो जाता है। इस दृष्टि से व्यग्यकार को निभय सजग तथा सचेत रहना पडता है तभी वह सामाजिक तथा मानवीय दुबलताओ को अपनी मुटठी म पकड जादुई खेल दिखाने की चेष्टा करता है जबकि कहानीकार के लिए यह आवश्यक नहीं।

वस्तुत यग्य का एकमात्र उद्देश्य विसगतियो को झकझोरना है। अनेक प्रकार की साजिशो दुवलता तथा विरूपताओं के विरुद्ध सत्याभिव्यक्ति के लिए यग्य एक ऐसा पात्र है जिसकी ऊर्जा की तपस स सारी विधाएँ द्रवित होकर तरल हो जाती हैं और पात्र की ही आकृति ग्रहण कर लेती है।

जिस प्रकार पानी का अपना कोई आकार नही होता पर अपने गुण धम स वह जिस भी पात्र म स्थापित होगा उसी तरह की आकृति ग्रहण कर लेगा। उसी प्रकार यग्य रूपी पात्र म व्यग्यात्मक कहानी या उप यास आदि समा विष्ट होते ही व्यग्य का रूप धारण कर लेते है और आज तक उ हें कहानी या उप यास, कविता तथा नाटक ही माना जाता रहा है। उदाहरण के लिए इस सकलन म राजस्थान क प्रतिनिधि कथाकार श्री यादवे द्र शर्मा च द्र की 'एक फ्लिम महान र्वि पर, श्रीमती सावित्री परमार की पोशीदा राज तथा श्री योगे द्र किसलय की एक कुत्त की मौत व्यग्यात्मक सशक्त कहानियाँ हैं जो यग्यपूर्ण होते हुए भी कहानी क सभी तत्वो को लिये चलती हैं।

श्रीलाल शुक्ल का राग दरबारी बदीउज्जमा का छठा त त्र, श्री अशोक शुक्ल का प्रोफेसर पुराण श्री हरिशकर परसाई का 'सदाचार का तावीज, शरद जोशी का तिलस्म और तिलस्म गाथा आ० पी० शर्मा सारथी का नगा रूहब म नू भण्डारी का महाभोज आदि अनक ऐसी सशक्त तथा प्रतीकात्मक व्यग्य रचनाए हैं जो समाज क विभि न पात्रो का सजीव एव सामयिक घटनाओ की विसगतियो का जीव त चित्रण है। यग्य के कानवास पर यथाथ के चौखटे खडे कर अपने विचारो क रग भरना और विसगतिया पर चोट करना ही इन रचनाओ का उद्देश्य रहा है।

श्रीलाल शुक्ल क राग दरबारी म शिवपाल गज एक काल्पनिक गाव है, जो राजनीतिक ग दगी म आकण्ठ डूबा है। डा० इ द्रनाथ मदान 'राग दरबारी को एक व्यग्यात्मक रचना मानते हुए कहत हैं इस उपन्यास के बारे मे यह कहना कि यह यग्य नहीं है और यह एक आचलिक उप यास है इसके मूल रचना विधान की उपेक्षा करना है। राग दरबारी मे व्यग्य का गहरा

पुट है जो जीवन को वास्तव में एक और धरातल पर उजागर करता है। यह उपन्यास कभी कभी व्यंग्य कथा का संकलन लगता है।"

'सदाचार का तावीज' 'तिलस्म गाथा' 'तिलस्म' आदि ऐसी रचनाएँ हैं जिनमें कथा, प्रसंग या घटना को इतना महत्त्व नहीं दिया गया जितना सामाजिक विरूपताओं को उघाडने के लिए तीक्ष्ण, उपयुक्त और सम्वेदनशील व्यंग्यों का। व्यंग्य खुद-ब-खुद सत्य का उद्घाटन करते चलते हैं।

श्री अशोक शुक्ल का 'प्रोफेसर पुराण' शिक्षा जगत पर तीव्र प्रहार करता है। स्वयं लेखक के शब्दों में—'मगतूराम सामान्य शिक्षक के प्रतीक हैं। निगम साहब शिक्षक की उस विवशता के पर्याय हैं जो चाहकर भी कुछ अच्छा न कर पाने के कारण अच्छे-बुरे से ऊपर उठ गई है, एक जड़ तटस्थता प्राप्त कर ली है उसने।'

श्री बदी उज्जमा के 'छठा तत्त्व' में पचतन्त्र की कथा को आधार बना कर मजहब, गांधीवादी प्रवृत्ति आदि अनेक प्रकार की समस्याओं पर चोट कर जहाँ व्यंग्य को सम्प्रेषण मिला है वहीं मन्नू भण्डारी का 'महाभोज' अपनी व्यंग्यात्मक आभा से अपने चौतरफा षड्यन्त्र को तल्खी के साथ उभार कर व्यंग्य विधा में एक और कीर्तिमान स्थापित करता है। डॉ० पी० शर्मा 'सारथी' का डोगरी से हिन्दी अनुवादित 'नंगा रुक्ख' का प्रत्येक पात्र मुखौटा ओढ़े हुए है जिसके कारण वह कुछ करना चाह कर भी कुछ कर नहीं सकता।

कहने का तात्पर्य यह कि व्यंग्य को इन रचनाओं में व्यापक विस्तार मिला है तभी व्यंग्य का प्रत्येक अस्त्र, तत्त्व अपनी पूर्ण कुशलता के साथ निखर कर आया है और व्यंग्य का एक व्यवस्थित रूप स्वतन्त्र एक अलग अस्तित्व के रूप में कहने को विवश करता है।

व्यंग्यकार व्यंग्यकार जीवन की बेलाग सच्ची तस्वीर दिखाता है साथ ही सामाजिक मान मूल्यों को सहज ग्राह्य बनाता है। जातिगत, सम्प्रदायगत कूप मण्डूकता से बाहर निकल कर सम्वेदना और मार्मिक प्रहार के साथ वह अनेक प्रवचनाओं पर चोट करता है तभी व्यंग्य विधा उच्चस्तरीय विधा के रूप में स्थापित होने का सफल प्रयत्न कर रही है।

वर्गे भी आज व्यंग्य को स्वतन्त्र विधा मानने वालों की कमी नहीं। श्री हरिशंकर परसाई, श्री शरद जोशी, के० पी० सक्सेना, डॉ० कन्हैयालाल नन्दन, डॉ० शेरजंग गर्ग, डा० वीरेन्द्र मेहदीरत्ता, रवीन्द्र त्यागी आदि अनेक ऐसे व्यंग्यकार हैं जिन्होंने व्यंग्य को काट तराश कर एक ऐसी स्वच्छ तथा मनमोहक मूर्ति का रूप प्रदान किया है जिसकी आभा में और विधाएँ फीकी निस्तेज लगती हैं। प्रायः प्रत्येक पत्र-पत्रिका में 'हास्य व्यंग्य', 'ताल बेताल', 'बठे ठाले', शीर्षक से एक स्थायी स्तम्भ भी इन व्यंग्यकारों की साधना का ही परिणाम है।

परसाई जी व्यग्य को श्रेष्ठ विधा मानते हुए कहते हैं कि व्यग्य का दायरा इतना विस्तृत है कि यह सभी विधाओं को अपने ऊपर ओढ़ लेता है। उनका यह कथन जहां व्यग्य का महत्वपूर्ण सिद्ध करता है वहीं अलग विधा के रूप में भी स्थापित करता है।

यू भी साहित्य के लिए व्यग्य एक ऐसी विधा है जिसके बिना तराश नहीं आ पाती।

डॉ० शेरजग गर्ग तथा डा० वीरेन्द्र महदीरत्ता ने हास्य व्यग्य पर शोध कार्य किया है तथा शेरजग गर्ग की पुस्तक व्यग्य के मूलभूत प्रश्न व्यग्यविधा को अन्य विधाओं से जोडने की सफल कडी है पर फिर भी वे व्यग्य को मात्र 'साहित्यिक माध्यम' भर कहकर रह जाते हैं। महदीरत्ता भी व्यग्यात्मक रचना को व्यग्यविधा की शृंखला में खडी करने में सकोच करते हैं। वे कहते हैं कि जब किसी साहित्यिक कृति के उद्देश्य की पूर्ति प्रधानत काव्य द्वारा हो तभी उस व्यग्यात्मक रचना की सज्ञा दी जा सकती है।

मेरे इस सकलन में व्यग्य एक निष्कलुष आत्मा है जो कभी सामाजिक चोला पहिन कर विरूपताओं का दरवाजा खटखटाती है तो कभी राजनीति का झीना वस्त्र पहिन कर विसगतियों को अपनी गिरफ्त में लेकर उसका सौना चाक करती है, कभी शिक्षा जगत का चिकना मखमली परिधान पहन कर उसकी भीतरी पर्तों में व्याप्त भ्रष्टाचार और अव्यवस्था पर तीखा प्रहार करती है।

इसकी सभी रचनाए समाज की दिशाहीनता दृष्टिहीनता को अपनी शिकस्त में बाँधकर जीवन की तीखी और सख्त स्थितियों को स्थूल तथ्यों में ही पेश नहीं करती वरन उसके भीतर की अतवर्ती धारा को पकडकर व्यग्य साहित्य में अपना अलग स्थान बनाती हैं।

मेरे इस प्रयास की सभी रचनाए सामाजिक यथार्थ का वर्णात्मक स्तर पर सम्प्रेषित करती हैं। यथार्थ ठोस होते हुए भी व्यग्य के स्पर्श से पारदर्शी हो जाता है और वस्तुस्थिति की तीखी प्रतीति के जरिये एक तराशा व्यक्तित्व तथा स्वस्थ समाज प्रदान करता है।

सक्षेप में जब ये रचनाएँ स्थितियों की पीडा तथा निराशा को व्यक्त करती है, मौकापरस्ती और चाटुकारों की पेचीदा नीतियों का यथातथ्य चित्रण प्रस्तुत करती हैं। शिक्षा ससार में व्याप्त भ्रष्टाचार और मान मूल्यों की परत परत खोलती हैं तो कौन कह सकता है कि राजस्थान में श्रेष्ठ व्यग्यकारों का अभाव है। ये रचनाएँ अपने आसपास की जिन्दगी पर गहरी आत्मीयता के साथ नजर डालती है एक ऐसी नजर जो व्यग्यकार की अपनी नजर है उसके मन की गहरी और तीखी छटपटाहट है। व्यक्ति मानस की अनिश्चित रिक्तता,

अलगाव और अजनबीपन का आभास है जो यहाँ के व्यंग्य-लेखकों को चोटी के व्यंग्यकारों के समक्ष खड़ा करने में समर्थ हैं।

इन व्यंग्यकारों के अतिरिक्त राजस्थान के व्यंग्य साहित्य में अभी भी कई हस्ताक्षर ऐसे हैं जिनमें खासी पैनेपन है और जो निरन्तर व्यंग्य विधा को निखार देने में प्रयत्नशील हैं।

डा० मंजु गुप्ता

कुछ नहीं के फूल

सतजुग की बात है। एक था ढेला और एक था पत्ता। दोनों म बडी दोस्ती थी, सत्ता और मद सी। पानी आता तो पत्ता ढेले को ढक लेता कि कहीं घुल न जाये। आंधी आती तो ढेला पत्ते पर बठ जाता कि कहीं उड न जाये। एक दिन दोनों म हो गई लडाई कि कौन छोटा, कौन बडा। तब तक आंधी-पानी साथ साथ आ गये। आंधी ने उडा लिया पत्ता और पानी ने घुला दिया ढेला। दोनों उडते रहे—घुलते रहे, उडते रहे—घुलते रहे। लेकिन लडते सतयुग भर रहे कि कौन छोटा, कौन बडा!

त्रेता मे एक बना सेवा एक बना सत्ता। एक दिन दोनों म हो गयी लडाई कि कौन छोटा कौन बडा। दोनों हो गये गुत्थमगुत्था, तो इस कदर घुल मिल गये कि पहचान ही न मिले। लगे, कि सत्ता हो गई है सेवा और सेवा हो गयी है सत्ता। दोनों त्रेता भर लडते रहे—लडते रहे।

द्वापर मे एक बना राजा, एक बना प्रजा। एक दिन दोनों म हो गयी लडाई कि कौन छोटा कौन बडा। दोनों ने वेश बदल लिये। एक बन गया दिन दूसरा बन गया रात—और भागे एक-दूसरे के पीछे। कभी दिन आगे कभी रात आगे। इसी तरह भागते रहे—भागते रहे द्वापर भर।

कलयुग म एक बना असली एक बना नकली। एक दिन दिनों म हो गयी लडाई कि कौन छोटा, कौन बडा। असली ने कहा, 'मैं बडा हूँ, क्योंकि मैं असली हूँ।

नकली नहीं माना। बोला 'अपने को तो सभी असली कहते हैं लेकिन असल मे असली हू मैं इसलिए मैं बडा।'

असली के तन मन मे लग गई आग उसने जलकर कहा, 'कसम खाकर कह कि क्या तो है तू और क्या हू मैं।'

नकली ने नकली कसम खाकर कह दिया अच्छा तो सुन। असली हू मैं और तू है कुछ नहीं का फूल।'

लेकिन असली भी असली था। उसने पकडा नकली का हाथ और कहा 'ऐसा

है तो चल राजधानी। चलकर हाईकमान के सामने सिद्ध कर कि तू है असली और मैं हू—कुछ नही का फूल !

दोनो ने अपने-अपने गुरु के चरण छुए चल पडे। देवलोक का मामला, राजधानी थी आसमान म। सवेरे चले थे, तब भी पहुचते पहुचते शाम हो गई। दोनों थक गये थे शहर के सदर दरवाजे के बाहर खाली सराय म टिकने गये, लेकिन वक्त की बात सराय थी लबालब भरी। सिफ एक सिंगल कोठरी खाली थी। इसलिए नकली ने कहा, ऐसा करें असली, कि मैं तो सराय मे आराम करू और तू जा शहर के भीतर।

'इसस क्या होगा ? यह पता कसे चलेगा कि कौन छोटा कौन बडा !' असली ने पूछा।

'देख, तू शहर म जाकर रात भर म खोज ले और जो चीज तुझे बिल्कुल असली लगे उस ले आ। सवेरे आकर तू सोना और मैं जाऊगा शहर मे। शाम तक अगर मैं सिद्ध कर दू कि तेरी लायी चीज नक्ली है तो मैं जीता न सिद्ध कर सकू तो तू जीता। बोल मजूर है ?

असली ने मजूर कर लिया। नक्ली तो सो गया सराय मे। और असली चला शहर के भीतर।

□

असली न शहर म घुसते ही सोचा—सबसे पहले यही देख लिया जाय कि इस शहर म कितने हैं असली और कितने है नक्ली ! देखें किसकी कितनी फालोइंग है !

लेकिन देखो अचभ की बात उस रात असली को सार शहर म कोई असली मिला ही नही। मिले तो वे मिले जो आगे पीछे स नकली थे ऊपर नीचे स नकली थ। आदमी देखे तो नकली मिले जसे मुखौटे हो। औरतें देखी तो नकली मिली जस मशीन हो। दोस्त दखे तो नकली मिले जसे दुश्मन हो। धम देखे तो नक्ली मिले जैसे अधे हो। ऊपर से छा गया था रात का अधेरा, इसलिए पक्के तौर पर यह भी पता नही लग रहा था कि ये सब जो नक्ली दीख रहे हैं असल म नक्ली भी हैं कि नही !

रात का समय और नकली नगर। खोजते खोजत थक गया तो असली ने सोचा—चलो मान लिया कि सारी दुनिया की तरह यह शहर भी नकली है मगर यहा का धर्मराज तो असली होगा ही। वह तो खुद इसाफ करता है। बताता है कि क्या असली और क्या नक्ली है ! वह चाहे तो भी असली के सिवा और कुछ हो ही नही सकता चलो वही चलें।

चल पडा। बिल्ली के चलने मे तो खर फिर भी कुछ आहट होती है मगर

असली धर्मराज के घर ऐसे दबे पाव घुसा कि हवा तक को उसकी गध न मिली। घर म स नाटा था, मक्खी मच्छर तक सो गये थ। घूमन घूमते असली पहुचा धमराज की पूजा वाली कोठरी मे। देखा तो भक्तिभाव म मक्खन-सा पिघल गया। भगवान की फोटो के सामने एक न हा-सा दीया जल रहा था, असली घी का। पास ही रखी थी एक अशर्फी—चदन सिंदूर अक्षत और पुष्पा की पूजा के चिह्नो से मडित धमराज राज सवेरे दफ्तर जाने से पहले इसकी पूजा करके जाते थ, यह अशर्फी पुश्तैनी थी पुरखो की थी इसलिए वे इसे अपने ईमान का प्रतीक मानते थे, पूजते थे।

कचन कामिनी को दूर स परखे सो योगी और छूकर परखे सो भोगी। लेकिन रात का वक्त हो और निजन एकात हा तो योगी और भोगी का भद भाव कस चले! छूकर देखन की इच्छा हुई तो असली ने हाथ उठाकर दख ली अशर्फी। बिल्कुल खरी थी असली सोने की।

सोना तो चीज ही ऐसी है कि आँख से देखो तो मन सनसनाये और हाथ स देखो तो तन सनसनाये। असली ने छ लिया अशर्फी को, तो लाभ जागा। उसने सोचा—इसी असली अशर्फी को लिये चलता हू। देखता हू नकली इसकी असलियत को कसे झुठलाता है इसे कस भ्रष्ट करता है!

फिर क्या था! असली गध बनकर आया था। धुआ बनकर उड गया वापस नकली के पास। रात अब प्रौढा के हुस्न सी ढल चली थी और सूरज मा के पेट म फडकने लगा था।

☐

नकली जो था सो नकली नीद मे आखें मूदे पडा था। असली ने जगाकर कहा, "सुन भाई नकली इस शहर म तेरी तो कोई सुनेगा ही नही क्यो कि यहां असलियत पुजती है।"

नकली बोला यह तो मैं आँखों देख लू, तब भी न मानू कि असलियत कभी पुज सकती है! तुझे धोखा हो गया है।

असली ने अशर्फी दिखा दी "देख इस असली अशर्फी को शहर का धमराज तक पूजता है। मेरी न माने तो पूछ ले इसी स।

नकली ने पूछा न ताछा, देखा न भाला, मुह बिचकाकर बोला यह अशर्फी? अशर्फी तो नकली है मैं सिद्ध कर सकता हू।

असली को आ गया ताव। उसन चुनौती दी 'अच्छा तो सिद्ध कर! अगर तूने इस अशर्फी को नकली सिद्ध कर दिया तो मैं मान लूगा कि तू असली और मैं कुछ नही का फूल! न सिद्ध कर सका, तो तू नकली, तेरा बाप नकली।

नकली मान गया, तो रात भर का थका हारा असली पडकर गया सो,

और नकली चला शहर के भीतर।

□

नकली ने शहर मे घुमत ही सोचा—सबसे पहले यही देख लिया जाये कि किसकी कितनी फालोइग है ! देखें इस शहर म किनने हैं नकली और कितने हैं असली !

लेकिन देखो अचभे की बात उस दिन नकली को सारे शहर म कोई असली मिला ही नही। नकली तो नकली थे ही असली भी नकली बने घूम रहे थे। कुछ लोग सभ्यता शिष्टता के चक्कर म नकली बन गये थे कुछ लोग सत्ता और धन के चक्कर मे। कुछ असलियत जान जाने के कारण नकली बन गये थे कुछ न जान पान के कारण। कुछ असलियत से बोर होकर नकली बन गए थे कुछ असलियत के आउट आफ फैशन हो जाने के कारण। बाकी बचे असलिया को कुछ थोड़े से नकलिया ने सुविधाओ के बदल गिरवी रख लिया था। यानी, कारण थे सौ पचास पर बात थी सौ बात की एक कि सब के सब नकली थे। इस कदर नकली कि देखन म बिल्कुल असली जान पडें !

ऐसी अटूट फालोइग दख जो न फूले सो पक्चर। नकली तो फूलकर कुप्पा हो गया, जस सात महीने का पेट हो ! उसने पहले तो मन्न पढकर माया फलायी, फिर एक पान जर्दे का खाकर मूछों पर ताव करते पट्ठा चला देखने कि यह असली अशर्फी वाला मामला क्या है !

नकली की माया ! अब इधर सवेरा और उधर धमराज के बगले मे लग गई जसे इमरजेंसी ! कुर्सिया तक सिटपिटायी दीवारें तक खामोश। नल से पानी तक डरता डरता टपके और रसोई म स्टोव तक बिना आवाज किये जल। सबके चेहरे भरे भरे थलो स लटके हुए सारे बगले म एक सवाल लाल लाल आखें निकाल बेंत फटकारता गरजता घूम रहा था कि सारे खिडकी दरवाजे तो अधनिश्वास स बद थ फिर भला पूजा वाली पुश्तनी अशर्फी गयी तो कहा गई कसे गई कब गयी !

मेमसाहब धमराज कुछ थोडा हरल थी। ऐसी तगडी धमवादिन कि बिना नहाये धोये बाथरूम तक न जायें। ऐसी भगतिन कि बिना हरिनाम लिये गाली तक न दें। लडें तो मुहल्ल क कुत्ते तक भौंकना भूल जायें रोयें तो धमराज की पतलून तक का पसीना छूट जाय। उन्होन भी अशर्फी की चोरी का हाल सुना।

तिरिया का हठ उसम क्या तो हो 'इफ और क्या हो बट धमराज ने लाख समझाया कि अशर्फिया और लडकिया तो प्रतापी पुरुषा के जूता के तलो की रगड स बरसती हैं, उनका भला क्या शाक ? अभी घटे दो घटे म सराफा

बाजार खुला जाता है मुंशीजी को भजकर नयी मंगवाय लेते हैं। पर मेमसाहब न मानीं। उल्टे हठ पकड गई कि पूजा वाली अशर्फी तो कुल का ईमान थी, वश की बरकत थी वही चली गई तो अब बचा क्या ! इसलिए जब तक वही असली अशर्फी वापस नहीं आ जाती तब तक वे खायेंगी तो सिर्फ तुलसीदल और पियेंगी तो सिर्फ गंगाजल !

धमराज ने विनत हो प्रस्ताव किया, 'लेकिन एक कप चाय तो ।'

"अब चाय पीयेगी मेरी मिट्टी ! तुम तो सच्ची धरम-करम को घोलकर पी गये हो ! बोला जब तुम अपने ही घर की चोरी का भेद नहीं पा सकते, तब फिर घर चुप तुम धमराजी ! ऊपर से चले हैं चाय पिलवाकर मेरा सत डिगाने बड़े आये कहीं के।'

धमराज ज्ञानी तो थे ही, पहले आम्पूमट म ही समझ गये कि अब इस घर में मेमसाहब के प्राण और अशर्फी रहेंगे तो दोनों रहेंगे वर्ना दोनों जायेंगे। इसलिए उन्होंने हुक्म दिया कि पूछताछ के लिए घर के सारे नौकर चाकरों को इकट्ठा किया जाये।

अब देखो किस्मत का खेल। पाडावण पक्षी सा धमराज का हुक्म अभी उड़ा ही था कि मेमसाहब के बाज जैसे हुक्म ने धर दबोचा। मर्दाना हुक्म जनाना हुक्म लड़ गये बाकी बचा शून्य ! दहाड़कर बोलीं ' सच्ची तुम तो अब बिल्कुल से सठिया गये हो जो अपने ही चाकरों पर चोरी लगा रहे हो ! ऐसा करो कि चाकू लेकर पहले काट लो मेरी नाक फिर मेरे नौकरों पर चोरी लगाना !"

देव-यक्ष हो तो यज्ञ से मना लो भूत प्रेत हो तो मंत्र से मना लो, पर हवा बयार हो तो उसे कैसे मनाओ ? मेमसाहब हो गई थीं हवा, गरम गरम लू सी सारे घर में झनाती घूम रही थीं। इसलिए धमराज और हुक्म---दोनों पिट पिल्ला से दुम दबाए भागे---ड्राइंग रूम को।

मेमसाहब की अटूट दहाड़ से घबराकर पैडा से वनदाखी उठे, ड्राइंग रूम से फोन---एक फोन राजा को एक फोन मंत्री को, एक फोन मन्त्री के नव बालिग लड़के को। पलक झपकते झपकते तीनों फोन रास्ता बदलकर जा पहुंचे कोटपाली। हर फोन ने कोटपाल साहब को डांटा और हुक्म दिया, अशर्फी बरामद करो।

कोटपाल साहब बचपन से ही गणित में कमजोर थे, ऊपर से सवाल मिला बेहद जटिल। शाम तक हल करके उत्तर खोजना था कि यदि बाहर से कोई आया नहीं और भीतर किसी ने ली नहीं, तो बताइये कि अशर्फी कहाँ गयी ?

हारकर कोटपाल साहब ने दरबार लगाया। खुद बैठे कुर्सी पर, सामने स्टूल पर रखवाया पान का बीड़ा। ललकारकर बोले, 'ए मेरे वीर सिपाहियो, तुमने सारे केस सुलझाये हैं। खूब मजे ले-लेकर, उलझा उलझाकर सुलझाये हैं लेकिन

यह बडा अटपटा केस है। जो अपने को बडा तीसमारखा समझता हो, वह उठा ले बीडा और करे बरामद अशर्फी !"

दरबार म छा गया सन्नाटा सुलगी बीडियाँ तक बुझ गइ। खिसके पतलून तक कस गये। सभी सिपाही एक नजर देखें अपनी औकात को और दूसरी हसरत भरी नजर से देखें बीडे को।

सरसरी निगाह से देखो तो आसमान मे सब तारे ही तारे हैं लेकिन गौर स देखो तो इन तारा के बीच एक चद्रमा भी है। सिपाही थ तारे, चद्रमा थ चीफ साहब ! उन्होंने बीडा उठा लिया। बोल हुजूर आपकी मेहरबानी से बदे न शौक मौज किये हैं। बिल्डिगें बनवायी हैं आज जब कुछ कर दिखाने का मौका आया है तब पीछे नही हटूगा मैं। लेकिन एक बात पहले से थोडा साफ कर दें सरकार जिसस बाद म चक्कर न पडे। बस इतना बता दें आप कि ज्यादा जरूरी क्या है—अशर्फी का बरामद होना कि अशर्फी का असली होना ?

अब इतनी छोटी सी बात मे कोटपाल साहब को भला क्या दुविधा होती ! उन्होंने सरकारी नीति बखान दी जरूरी है अशर्फी बरामद होना। जो बरामद होगी वह असली तो होगी ही !

चीफ साहब सब समझ गय इसलिए कागजी तफ्तीश करने चल पड।

□

कोई साधारण सासारिक जन से सबधित मामला होता, तो तफ्तीश थोडा पुराने ढर्रे पर चलती पर यह तो था खास देवलोक के धमराज के घर म चोरी का मामला। बडो की बात ठहरी तफ्तीश भी बड लिहाज सकोच के साथ सम्मानपूवक चली। अब धमराज के बगले के भीतर तो झीगुर तेलचट्टो तक स पूछताछ की मुमानियत थी इसलिए सारी तफतीश कोटपाली मे ही चली। यानी तफ्तीश हुई असगति अलकार से मडित।

चीफ साहब ज्ञानी थ, सुलझे हुए थे इतना तो वे बात सुनकर ही समझ गए थे कि अशर्फी किसी घर क नौकर चाकर ने ही इधर उधर कर दी है पर तफ्तीश तो कर नही सकते थे। आखिर अब करें तो क्या करें ?

उन्होंने फौरन पकड बुलवाया शहर के सबसे बडे दादा को। आते ही उसके गाल पर वह झन्नाटेदार हाथ धरा कि गाल पर नदियो-पहाडो के मानचित्र बन गये। दादा ने हाथ पकड लिया चीफ साहब का। उन्हें याय का रास्ता न छोडने को उत्साहित करत हुए बोला अब ऐसी अधर तो मत्युलोक तक मे नही है साहब। माहवारी दस्तूरी पचीस तारीख तक पहुँचाने की बात थी आप आज पांच दिन पहले से ही मारपीट पर उतर आये ! ऐसी क्या गलती पड गई हम सेवको से !

'क्या नाम साले मारपीट नहीं, अभी तो मैं डालूंगा डंडा तेरे हलक में! तुम लोगों को साले हजार बार समझा दिया कि जो करना हो मंडी बाजार में करो, पब्लिक में करो, मगर तुम लोग मारे लोभ के सीधे राजमहल में घुसे चले जा रहे हो। अंधे हो गये हो साले, सिविल-लाइंस में ही हाथ फिरा दिया! आज मैं एक एक की चमड़ी छील दूंगा। हुलिया न बिगाड़ दिया तुम्हारे तो अपने असली बाप का पैदा नहीं!'

कहते-कहते दस पांच हाथ और धर उड़ाने।

'अरे तो पूरी बात तो बताओ पहले। हो क्या गया सिविल लाइंस में, कुछ पता तो चले! अगर किसी नौसिखिये ने वहां कोई वारदात कर दी है, तो मैं अभी पकड़कर लाता हूं साले को। कुछ जानें समझें तभी तो हमारा पौरुष चले!" दादा बोला।

'क्या नाम साले, धमराज के घर से पूजावाली अशर्फी चोरी हो गयी और तुम साले बड़े पुजारी के बाप बनकर पूछ रहे हो कि क्या हुआ! अब ऐसी मस्ती चढ़ी है तुम लोगों को कि सरकारी अफसरों पर हाथ फेरने लगे! क्या नाम साले, मेमसाहब धमराज सत ठान कोपभवन में पड़ी हैं, कि बिना अशर्फी मिले खाना पियेंगी नहीं, इसलिए एक घंटे के अंदर-अंदर अशर्फी मय चोर के हाजिर करो लाकर, वर्ना मुझे शरीफ आदमी मत समझना तुम। एक एक का करम फोड़ के रख दूंगा!'

दादा सब समझ गया। चलते चलते बोला, 'अरे एक घंटे की कोई बात नहीं है चीफ साहब, दस-बीस मिनट कम-ज्यादा लग सकते हैं। अशर्फी आ जायेगी आपकी, मय चोर के। इतनी छोटी सी बात के लिए गाली गलौज करना आपको शोभा नहीं देता। आखिर हमारी भी तो कोई इज्जत है।'

चांद-सूरज की बात हो तो टल जायें, पर दादा की बात कैसे टले! उसने इलाके के सारे छुटभैया को इकट्ठा कर साफ-साफ कह दिया, 'तुम लोग साले जाने सिविल लाइंस से धमराज की अशर्फी उड़ा लाये। आधे घंटे में मय चोर के अशर्फी आ जाय मेरे पास वर्ना एक को भी जिंदा नहीं छोड़ूंगा! मैं चीफ साहब से वायदा कर के आया हूं। खाली नहीं जानी चाहिये मेरी बात। आपस में तय कर लो और जहां भी हो अशर्फी लेकर आओ। वर्ना, जैसे कल्लू और भूरे गायब हो गये थे, वैसे तुम सब भी एक एक करके गायब हो जाओगे दुनिया से।"

फिर हुई छुटभैया की आमसभा। इतना तो खैर अंधे को भी दीख रहा था कि न मिली अशर्फी तो सारे छुटभैयों का काम धंधा बंद, बाल बच्चे मरें भूखों! जान की जोखिम ऊपर से। लेकिन असली अशर्फी थी असली के पास, छुटभैयों को कैसे मिले!

सच्ची लगन से खोजा जिसने, उसे परमात्मा मिल जाता है। अशर्फी भला

चीज क्या है ! आखिरकार मिल गई अशर्फी। एक चोर भी मिल गया इस शत पर कि जितने दिन वह जेल काटे, उतने दिन हजार रुपये महीने के हिसाब से मिलते रहे उसके घरवालो को, छुटभैयो की तरफ स, एडवांस।

और इस तरह उधर असली तो पडा पडा सोता रहा सराय म और इधर नकली की माया स अशर्फी हो गई बरामद। अबकी कोटपाली म फोन उडे मत्री सुन को मत्री को, राजा को फिर सारे फोन हसत खिलखिलात वापस लौटे धमराज के पास कि लीजिए श्रीमान ! मिल गई आपकी अशर्फी पकडा गया चोर।

फिर फाइल भवानी की पूजा हुई। कागज महराज का पट भरा गया। अशर्फी की सुपुदगी दे दी गयी धमराज को। गाजे बाजे क साथ अशर्फी पूजन हुआ ममसाहब न व्रत तोडा चाय पी। क्याओ ने लाई खील त्वनाओ न फूल नाजानकारो ने मोती और जानकारो न आंसू बरसाय।

उधर दिन अब बर्खास्त मत्री क दबल्वे सा ढल रहा था।

□

असली अभी सो रहा था। नक्ली ने उसे जगाकर कहा सुन बे तू असली समझकर जिसे उठा लाया था वह अशर्फी बिल्कुल नक्ली है। असली तो बरामद हो गयी है और ठाठ से पुज रही है। मेरी न मान तो ल ये पढ लोकल अखबारो के साध्य सस्करण।'

असली ने अखबार पढ। चोर अशर्फी और चीफ साहब के फोटो दखे। अब उस काटो तो खून नही। उसने टेंट स निकालकर देखा, अशर्फी उसी के पास थी। फिर कहा मे बरामद हो गयी असली अशर्फी ? उसने नक्ली से कहा "अभी एक दिन और रुक भाई। मैं इस अशर्फी को वही रखे आता हू सवेरे अपने आप असली नक्ली का फैसला हो जायेगा।

नकली मान गया। असली रात मे चुपचाप अशर्फी को जहा से लाया था वही रख आया नक्ली अशर्फी के पास।

अगले दिन फिर हा हाकार। फोन उडे वनपाखी उडे। धमराज ने फिर रिपोट की। कोटपाल न चीफ साहब को बुलाकर कहा चक्कर पड गया ! मुझ लगता है वह साली अशर्फी वही कही आसपास खो गयी थी, अब फिर मिल गयी है बताओ अब क्या हो ?'

चीफ साहब चिंतित हुए। बोले अब कुछ नही हो सकता साहब ! चोर पकडा गया माल बरामद हो गया माल सुपुदगी हो गयी। अब तो सरकार हमारी बरामद अशर्फी ही असली है !"

'तो फिर मैं इस दूसरी अशर्फी का क्या करू ?"

'करना क्या है सरकार, तफ्तीश कीजिए आप और इस नतीजे पर पहुच जाइए कि बाद वाली अशर्फी नक्ली है प्लाटेड है।"

हुई जमकर तफ्तीश हुई। साफ पता चल गया कि बाद वाली अशर्फी नक्ली है, जिसे किसी ने शरारतन जान बूझकर गुमराह करने की नीयत स रखा है। लेकिन कागजी सबूत क बिना क्या तो असली और क्या नक्ली इसलिए कागजी सबूत जुटाने अशर्फी भेज दी गयी—सरकारी जाचशाला।

सबस असली अशर्फी सरकारी जाचशाला म पडे पडे सड रही है और नक्ली अशर्फी ठाठ से पुज रही है। असली सराय म पडा है इस उम्मीद म कि कभी जाच पूरी होगी और सिद्ध हो जायगा कि उसकी वाली अशर्फी ही असली है। नक्ली नगर-नगर डगर डगर लोगा को बताता घम रहा है कि वह है असली और वह जो सराय म मुह छिपाए पडा है कुछ नही का फूल!

एक और विनयपत्रिका

आजकल परीक्षाओ क दिन है। पर्चे एक क बाद एक युद्ध क्षेत्र म सिपाहियो की तरह गिरते जा रहे हैं। कापिया हर साल की भांति आनी शुरू हो गई हैं पर अब उनके सुडौल स्वरूप को देखकर वह खुशी नही होती जो उनक आने पर पहले होती थी। अब तो मन कहता है। देख वह फिर आ गई। पिछले साल तो बडी मुश्किल से उसे निष्कासित किया था अब की बार उसने अपनी छोटी बहिन को भेज दिया। मुझ भी यह रामास करते करते करीब दो युग बीत गये। कोई अखड दीप थोडे ही हूँ। आखिर हर बात की कोई सीमा होती है।

खर, एक बात जो वह बरसा स सनातन धम की तरह चली आ रही है वह है मेरे नाम की पाती। पता नही कहाँ कहाँ से व्यथित मन अपनी दारुण कथायें मेरे पास लिख भेजते हैं। यदि मैं इन सबका सकलन प्रकाशित करा देता तो ही एक महाभारत तयार हो जाता पर मैंने सोचा कि कागज के अकाल म यह दुष्कृत्य होगा। अत कापिया स प्राप्त उन पातिया का भावानुवाद मैंने एक पत्र म ही नत्थी किया। उनकी पाती—विद्यार्थी का परीक्षा को प्रम पत्र—का एक उदभट उदाहरण प्रस्तुत है—

श्रध्येय प्रात स्मरणीय गुरुदेव

साष्टाग दडवत प्रणाम !

पत्र लिखने स पूव यह जीवनमुक्त आपके व्यक्तित्व को परीक्षा भवन के मरघटी वातावरण मे विभिन्न रूपा म देख रहा है। एक तरग आकर कहती है कि आप करुणानिधि हैं दूसरी उतने वग स आकर कहती है कि आप कोपपुज हैं। अत मे यह सोचकर कि कहो कौन दर जाऊँ यह अपनी हृदय विदारक राम कहानी आपक समक्ष प्रेषित कर रहा हूँ। मरे अन्त स्थल म आप दीनबधु कृपानिधान दुखहर्ता, सुखकर्ता, हैं जिनकी किंचित कृपा मात्र स पगु गिरि लध और रक चल सिर छत्र धराई।

गुरुदेव ! आप मेरे स मीलो दूर किसी महानगर के आलीशान प्रकोष्ठ मे बठे होग। मुझे यह किंचित भी मालूम नही कि यह पत्र किस दिशा की ओर

जायेगा। हाँ, इससे मेरे मन की दिशा का पता आपको अवश्य लग जायेगा। परीक्षा पर आक्रमण करते करते बरसो बीत गये हैं परन्तु गगा गहन से गहनतम होती जा रही है। प्रत्येक वर्ष मेरे माता पिता के लिए भारी बनता जा रहा है, मेरी शादी हर वर्ष स्थगित करनी पड रही है।

पर गुरुदेव परीक्षा ने तो अपनी टाग अगद की तरह अडा रखी है। आगे बढने नही देती। न खुदा ही मिला न बिसाले सनम। आखिरकार हमारे पास एक ही अन्तिम अस्त्र बचता है कुतुबमीनार से भूतल का चुबन। यह मेरा अन्तिम प्रयास है, यदि असफल रहा तो कुतुबमीनार से सपन्न प्रयास करूँगा।

मैं मानता हूँ, मैंने वह नही पढ़ा जो आपने पूछा है या यो कहिये आपने वह नहीं पूछा जो मैंने पढ़ा है। बात एक ही है। आखिर कहा तक पढा जाय? जब भी कोई अध्यापक मुझे परीक्षा का स्मरण कराता तो मेरी स्वच्छन्द आत्मा बड़ी ही कुठित होती। मैं सोचता, परीक्षा के जाल, इन्द्रजाल से मुक्त होना ही सबसे बडी मुक्ति है। जब भी किसी अखबार मे 'परीक्षा प्रणाली म परिवर्तन पर लेख आता या राष्ट्रपति, प्रधानमत्री, शिक्षामत्री व शिक्षाविदो के भाषणो का सक्षिप्त ब्यौरा छपता मैं उन्हें मन ही मन बडा साधुवाद देता। मैं कल्पना करता कि जब देश के समस्त महान व्यक्ति इस प्रणाली म परिवर्तन चाहते हैं तो परिवर्तन अवश्यम्भावी है। मैं उन्हें शत शत प्रणाम करता यह सोच कर कि जिन लोगो ने देश को अग्रेजो की दासता म मुक्त कराया वे अवश्य ही इस नई पीढ़ी को भी परीक्षा की अग्रेजी प्रणाली से मुक्त करायेंगे। पर, वही ढाक के तीन पात।

गुरुदेव! मेरी ये बातें आपको बडी बेतुकी लग रही होगी। छोटे मुह बडी बात लक्ष्मण परशुराम सवाद। अब तो बात करते-करते मुह भी पक गया। आप सोचेंगे कि कोई बहुत ही निकृष्ट और निलज्ज व्यक्ति इन पक्तियो के पीछे बोल रहा है। पर यह सत्य नहा है। मैं अत्यन्त ही कुलीन भावुक व सभ्य मानव हूँ। केवल निगोडी परीक्षा ने मुझे बेकार कर दिया है। सामने रखे हुए पर्चे के प्रश्न मेरे दिल पर पेपर वेट की तरह रखे हुए हैं। उनका क्या करूँ? उन्हें मैं यथास्थान ही छोड देता हूँ।

फिर भी मान मर्यादा का पालन करते हुए कुछ शकुन के रूप म, मैंने अपनी लेखनी को चलाया है। थाडे को ही आप बहुत मानना। आप कृपया अपनी गरिमा बनाये रखें। महान व्यक्ति दूसरो के लिय ही जीवित रहते हैं। आप मेरी मदद कर पूरी नई पीढी की मदद करेंगे। एकत्व का महत्व म गमा जाना ही धर्म है। यही बौद्ध धर्म है यही आधुनिक समाजवाद और यही चिरतन चितन की चिता।

राम और कृष्ण ने कुछ राक्षसो का वध करके अपने लिए विशेषणो की

माला गुथवा ली, पर गुरदव मैं आपको विश्वास दिलाता हू, यदि आप परीक्षा उ मूलन अभियान म सनिय हो जायें तो आपका यह चरणन्यास आपको समस्त ससार मे अभिनदनीय करवा देगा। यदि आप परीक्षा की आक्रामक मुद्रा का नष्ट करने म कुछ पहल करें तो पीडित मानव आपकी चरण रज को अपने मस्तक पर लगायेगा। यदि आप नरसिंह बन इस चतुर्मुखी पिशाचिनी का वध कर दें तो आपका चित्र ससार के प्रत्येक घर म प्रतिष्ठित हो जायगा। आप इससे मेरी व मरी समकक्ष पीढी की अ तर्वेदना का अनुमान लगा सकन हैं और यह भी अन्दाज लगा सकते हैं कि यह पीढी किस तत्परता स धमसस्थापनाथाय के ग्राहक की प्रतीक्षा कर रही है।

गुरुदव ! यदि परीक्षा मुझे अहिल्या बना देती तो मैं शाति स किसी वन मे पडा रहता परन्तु उसन मुझ सुदामा बना दिया। एक विषय को सभालता हूँ तो दूसरा जभाई लेन लगने लगता है उसका शात करता हू तो तीसरा चिल्ला उठता है उसको दुग्धपान कराता हू तो अन्य चीत्कार करने लगता है। मेरा रोदन तो अरण्यरोदन मात्र होकर रह गया है ! मेरी ब्राह्मण पोटली के अक्षत चारो ओर के छिद्रो से बिखर रहे हैं। मैं असमर्थ हू इन्हे सभालन म।

ऐसी मानसिक दशा मे यदि मुझे अपन दश के ऐतिहासिक भवनो का स्मरण हो भी आये तो क्या गुनाह ? कुतुबमानार ही अपना अन्तिम शरणस्थल है। ताज महल बनान की बात तो आप मेरा नाम परिणाम घोषित होने के दूसरे दिन अखबारो मे न पढ लें, तब सोचना। कुतुबमीनार जिन्दाबाद ! ताजमहल मुर्दाबाद !!

हा पत्र के अन्तिम छोर पर पहुँच कर एक रहस्य उदघाटित कर देता हू। इस पृष्ठ से चौथे पृष्ठ पर यानी इस कापी के मध्य म प्रसाद रूप म मुद्राराक्षस बठा है। उसे आप पुष्पम पत्रम फलम् तोयम समझ कर स्वीकार करें। श्रीमान 'अबकी बार मोहि पार उतारो।

जेहि विधि नाथ होई हित मारा
करौ सो वगि दास मैं तोरा।

आपका चरण सेवक
जीवनमुक्त

ऐसे पत्रो को पाकर वडे वडे लोगो के कलजे दहल जाते हैं। मेरा भी नन्हा कलेजा बहुत बार दहला परन्तु झटके खाकर वह भी पक्का हो गया। पत्र हमारे दिल को पिघलाने के लिए तो आ जाते हैं पर उनके उत्तर किस तरह भजे जायें ? यह अहम प्रश्न सदा बना रहता है। फिर यह सोचा कि वडे लोग हर एक पत्र का उत्तर नही देते। वे अपना उत्तर अखबार म छपवा देत हैं। मुझे भी यह टकनीक अत्यन्त सभ्य लगा। मैंने यही किया।

विद्यार्थियो से प्राप्त प्रेम पत्रो का सामूहिक सार्वजनिक उत्तर मैंने इस प्रकार लिख भेजा। मेरे परीक्षा खडित शिष्य,

श्रद्धा व निष्ठा मे लिखी हुई तुम्हारी विनयपत्रिका मैंने बडी लगन व ध्यान से पढी। उसे पढ कर मेरा रोम रोम हर्षित हो उठा। कई दिनो से कापियां जांचते जांचते मैं भी ऊब चुका था। तुम्हारे पत्र ने एकदम नये रक्त का संचार कर दिया। जडता टूटी और वातावरण मे नूतनता का प्रसार हुआ।

तुम्हारा पत्र मैंने एक नही अनेको बार पढा और जितनी बार पढा उतना ही अधिक आनंद प्राप्त हुआ। उसमे साहित्य के अनेक रसो का समावेश कर तुमने अपनी कलो को बहुत ऊँचा उठाया। लावण्यता का शाश्वत गुण तुम्हारे पत्र मे मौजूद है। मुझे आशा है कि विश्व के पत्र लेखन साहित्य मे उसे उच्च स्थान प्राप्त होगा।

कुतुब प्रेमी! परीक्षा भवन के मरघटी वातावरण मे तुम्हारा मन शाखामृग की तरह उछल कूद करता रहा और इसी मूड मे तुम अपनी कापी के मध्य भाग मे कुतुबमीनार की ऊँचाइयो तक हो आये, प्रशंसनीय है। तुम्हारे पास तो तीन घटे का समय था और वह समय तुमने सिरसका के जगल के शेर की तरह मुक्तावस्था मे काटा परन्तु पीडित पुत्र! मैं तो नियमो के पिंजरे मे आबद्ध एक चिडिया हू। चहक सकता हूँ गुर्रा नही सकता। अवधि की परिधि मे पीडित कोई मानव इस भूतल पर हो सकता है तो वह मैं ही हूँ। मैं थोडा लिखने का आदी नही हूँ परन्तु मेरे पास तुम्हारे समय का छठा भाग भी नही है। अत तुम थोडे को बहुत मानना।

हा एक बात मैं तुम्हारे कुतुबमीनार के अटूट प्रेम के संबध मे अवश्य कहना चाहूँगा। महाकवि केशवदास ने लिखा है

अकाल मृत्यु सो मरे
अनंत नरक मो परे।

ऐसा न हो आकाश से गिरा और खजूर मे लटका।
विवेक विभूषित बाचाल!

तुमने परीक्षा प्रणाली के उन्मूलन मे मुझे सहायक बनने का जो आह्वान किया इसके लिये कृतज्ञ हूँ। मैं स्वय भी इस दासता से अत्यत पीडित हूँ। मैं ही नही और भी अनेक अध्यापक इस आन्दोलन मे तुम्हारा साथ दे सकते हैं यदि तुम सत्याग्रह कर समाज का नेतृत्व करो। सदा से ही—और आजकल विशेष रूप से—कमसेन की बागडोर युवा पीढी के पास ही रही है। गुरु विश्वामित्र ने राम का प्रशिक्षण दिया और उनसे बाण चलवाए। अरस्तू ने सिकन्दर को प्रशिक्षित किया और उसे चक्रवर्ती सम्राट बनने को प्रोत्साहित किया। मैं भी इस शुभ कार्य मे तुम्हें आशीर्वाद की प्रेरणा देता हूँ। अभी अवसर है मत चूके चौहान।

छिद्रा वेपी !

मुझे आश्चय है कि तुमने मुझ सुषमा व मूल रोग का अनुमान लगाकर मुद्राराक्षस दशनाय भेजा, उपकृत हू। पर मैं तुम्हे विश्वास दिलाता हूँ, विश्व विद्यालय के दफ्तर व पोस्ट आफिस की टक्करों म वह चकनाचूर हो गया। हा, फिर भी मैंने उसे स्पश कर यथासभव प्रौढ रोमास का अनुभव किया।

अत मे मैं तुम्हारे उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हुआ तुम्हारी प्रलयनिशा मे विचाराथ कबीर की दो सधुक्कडी पक्तिया लिख भेज रहा हूँ

काहे री नलिनी तू कुमलानी
तेरे ही नालि सरोवर पानी।

तुम्हारी आशाओ का प्रहरी
तुम्हारा गुरु
स्थितप्रज्ञ

सहज कृपन सन सुन्दर नीती

जब जब 'मानस' में 'सुन्दरकाण्ड' के 'सहज कृपन सन सुंदर नीती'—वचन पर मेरा ध्यान जाता है तब-तब मुझे व्यास का यह कथन याद आ जाता है—'कृपणेन समोदाता नुवि कोऽपि न विद्यत। अनश्ने नेव वित्तानि य परेभ्य प्रयच्छति।' (इस पृथ्वी पर कृपण के समान कोई दाता नहीं है जो भूखे रहकर भी अपना धन दूसरे के लिए देता है)। और मैं सोचने लगता हूँ कि व्यास ने जिसे इतना ऊंचा चढ़ाया उसे ही तुलसीदास ने इतना नीचा क्यों गिराया ? क्या तुलसीदास बेचारे कृपण के अद्वितीय त्याग को नहीं पहचान सके ? दान देना बहुत सहज नहीं है और भूखे रहकर देना तो और भी कठिन है। जब शास्त्र भी भूखे को पाप करने की ढील देते हैं (बुभुक्षितो कि न करोति पापम्) तब भी जो व्यक्ति पाप न करके दान करे उसे सुंदर नीति के सर्वथा अयोग्य ठहरा देना तुलसी जैसे संत के लिए ही शोभनीय हो सकता है!

तुलसी आग्रहवाले थे। जीवन भर ऐसी ही बातें कहते रहे और विरोध सहते रहे। 'ढोल गवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताडन के अधिकारी' कह कर विश्व की आधी जनसंख्या को विरोधी बना लिया। कृपणों को उसी सांस में छेड दिया जिसमें शठों, ममतालुओं, लोभियों व क्रोधियों को छेडा। असज्जनों और असंतों को पहले ही खरी खोटी सुना चुके थे। अप्रिय सत्य को बोलकर उन्होंने न जाने कितनों को अप्रसन्न कर लिया और लिख डाला बड़ा-सा पुथक्कड़। कोई उसे क्यों पढ़े ? खरी-खोटी सुनने के लिये। चाहे जैसा तीसमारखां हो, कहीं-न कहीं उनकी पकड़ में आ ही जाएगा और तब वे सुनाने में नहीं चूकेंगे, सारी शेखी झाड देंगे। और बड़े मजे की बात यह है कि 'मानस' की समाप्ति पर पहुंचते ही कह देंगे—

> कामिहि नारि पियारि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
> तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

अपने आराध्य की भक्ति करने जा रहे हैं और आदर्श सामने रखते हैं कामी का, लोभी का। एक ओर उन्हें इतना गिराया और दूसरी ओर उन्हें इतना चढ़ाया। कहीं एकरूपता है ही नहीं। और पाठकों का यह हाल कि गालियां

छिद्रान्वेषी !

मुझे आश्चर्य है कि तुमने मुझ सुदामा के मूल रोग का अनुमान लगाकर मुद्राराक्षस दशनार्थ भेजा, उपकृत हू। पर मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ, विश्व विद्यालय के दफ्तर व पोस्ट आफिस की टक्करो मे वह चकनाचूर हो गया। हाँ फिर भी मैंने उस स्पश पर यथासभव प्रौढ़ रोमास का अनुभव किया।

अन्त मे मैं तुम्हारे उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हुआ तुम्हारी प्रलयनिशा म विचाराथ कबीर की दो सधुक्कडी पक्तिया लिख भेज रहा हूँ

काहे री नलिनी तू कुमलानी
तेरे ही नालि सरोवर पानी।

तुम्हारी आशाओ का प्रहरी
तुम्हारा गुरु
स्थितप्रज्ञ

सहज कृपन सन सुन्दर नीती

जब जब मानस में 'सुन्दरकाण्ड' के 'सहज कृपन सन सुंदर नीती'—वचन पर मेरा ध्यान जाता है तब-तब मुझे व्यास का यह कथन याद आ जाता है—'कृपणेन समो दाता भुवि कश्चिन्न विद्यते। अनश्नन्नेव वित्तानि यः परेभ्यः प्रयच्छति।' (इस पृथ्वी पर कृपण के समान कोई दाता नहीं है जो भूखे रहकर भी अपना धन दूसरे के लिए देता है)। और मैं सोचने लगता हूँ कि व्यास ने जिसे इतना ऊंचा चढ़ाया उसे ही तुलसीदास ने इतना नीचा क्यों गिराया? क्या तुलसीदास बेचारे कृपण के अद्वितीय त्याग को नहीं पहचान सके? दान देना बहुत सहज नहीं है और भूखे रहकर देना तो और भी कठिन है। जब शास्त्र भी भूखे को पाप करने की ढील देते हैं (बुभुक्षितो हि किं न करोति पापम्) तब भी जो व्यक्ति पाप न करके दान करे उसे सुंदर नीति के सर्वथा अयोग्य ठहरा देना तुलसी जैसे संत के लिये ही शोभनीय हो सकता है!

तुलसी आदर्शवादी थे। जीवन भर ऐसी ही बातें कहते रहे और विरोध सहते रहे। 'ढोल गवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताडन के अधिकारी' कह कर विश्व की आधी जनसंख्या को विरोधी बना लिया। कृपणों को उसी सांस में छेड़ दिया जिसमें शठों, ममतालुओं, लोभियों व क्रोधियों को छेड़ा। असज्जनों और असंतों को पहले ही खरी खोटी सुना चुके थे। अप्रिय सत्य को बोलकर उन्होंने न जाने कितनों को अप्रसन्न कर लिया और लिख डाला बड़ा-सा पोथा। कोई उसे क्यों पढ़े? खरी खोटी सुनने के लिये। चाहे जैसा तीसमारखां हो, कहीं-न-कहीं उनकी पकड़ में आ ही जाएगा और तब वे सुनाने में नहीं चूकेंगे, सारी शेखी झाड़ देंगे। और बड़े मजे की बात यह है कि 'मानस' की समाप्ति पर पहुंचते ही कह देंगे—

> कामिहि नारि पियारि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
> तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

अपने आराध्य की भक्ति करने जा रहे हैं और आदर्श सामने रखते हैं कामी का, लोभी का। एक ओर उन्हें इतना गिराया और दूसरी ओर उन्हें इतना चढ़ाया। कहीं एकरूपता है ही नहीं। और पाठकों का यह हाल कि गालियां

सुनते रहेंगे पर पढ़ेंगे उन्हें ही। सुस्त वर्ष भर मे मानस पढ़ेंगे, कम सुस्त मास म और एकनिष्ठ उसे नौ दिन म पूरी कर लेंगे तथा कुछ उसके पाठ के नरतय पर ही सतोष कर लेंगे। न जाने कसा सम्मोहन है! रामनाम का ही हाला तो इतनी भापाओ म अनुवाद क्या होते?

बेचारा कृपण इतना ही तो करता है कि न वह स्वय खाता है और न दूसरे को खाने देता है। वह खाये और दुनिया को न खाने दे तब तो उस पर अगुली उठाई जा सकती है। जीओ और जीने दो का झडा उठाने वाले कई मिल जावेंगे और खाओ और खाने दो के समथक भी भरे पडे हैं पर 'न खाओ और न खाने खाने दो' के सीधे सच्चे नीति निर्देशक सिद्धान्त को कोई मानने को तैयार नही होता है। 'आत्मानि प्रतिकलानि परषा न समाचरेत' का इतनी कठोरता स पालन और फिर भी उनके प्रति इतनी घणा। दुनिया के छद्म व्यवहार स कोसो दूर रहने से जिन्हें पूज्य बनना चाहिए वे निन्दनीय बन गय! कुछ समझ म नही आता।

अठारह पुराणो के कवि ने जिस सहानुभूति से कृपणो को समझा था वह बाद के कवियो के मन म उत्पन्न ही नही हुई। उनका अकुठित व्यक्तित्व था। बात को सही सतुलित रूप म समझने की क्षमता थी। बाद के कवियो को तो *उनके बौनेपन ने उबरने ही नही दिया। उन्हे सबत्र कलुष ही कलुष दिखाई दिया।* यह आछापन है। न पूरी शिक्षा व दीक्षा कलम पकडी। जो कुछ लिख दिया। यह ओछापन है। न पूरी शिक्षा व दीक्षा, कलम पकडी जो कुछ लिख दिया कविता बन गई। रसदशा तक नहा पहुच पाये ता विचार कविता, अकविता का *नारा उछाल दिया अलकारो का अध्ययन नही* तो बिम्बो पर उतर आये। छद ज्ञान नही तो गद्य के वाक्यो को मुद्रको के षडयन्त्र मे शामिल हो तोडकर लिख डाला। शुद्ध हिन्दी पर अधिकार नही तो अपनी अपनी बोलियो के शब्दो पर उतर आये विदेशी शब्दो के पैबन्द से नई शलवार बना डाली।

बात समझ मे आ गई। कवि कम जब रोटी रोजी स जुड गया होगा तब कोई निराश्रित कवि भूल से किसी ऐसे व्यक्ति के पास चला गया होगा जो जीवन की निरतरता मे विश्वास करता होगा और सोचता होगा कि इस जीवन का सचय अगले जन्म मे मिलेगा। अत उसके सामने पेट दिखाकर फलाये हाथ खाली रह गये होगे और बम याचक बरस पडा होगा। गालियाँ दी होगी उठक पटक की होगी। पर इससे क्या हारा याचक ही होगा। गालियाँ उसका बाल भी बाका नही कर सकी होगी उठक पटक की खरोचें उसके मनस्तोष को डग मगा न सकी होगी। तब हताश कवि उसे बदनाम करने पर उतर आया होगा। प्रशसा के पुल बाधने म पहले से ही चतुर था। अब निंदा पर उतरकर कम थोडे रहा होगा। उधर कृपण को कवि की बिरादरी के व्यक्ति की इतनी बात

याद आ गई होगी कि निंदका को तो समीप रखना चाहिए। इससे उसका मनस्ताप दुगुना हो गया होगा। लक्ष्मी एवं सरस्वती की एक साथ उपासना करने का सुयोग उसे सहज ही मिल गया।

हाथी हाथी ही रहेगा और श्वान श्वान ही। इसके भौंकने से उसकी मस्ती में कोई अन्तर नहीं आता। पैसे की मस्ती अदभुत मस्ती, जिस तक धतूरे (कनक) तक की मस्ती पहुँच नहीं सकती। सुरापान की मस्ती में झूमने वालों की मस्ती-चित्रण के तो अंबार लग गये पर धन की मस्ती की अदा ही अलग होती है। चाहे पैसा बालक के पास हो या जवान के पास अथवा बूढ़े के पास। बचपन में मुझे हाट के दिन एक पैसा मिलता था तब मेरा सीना तन जाता था और हाथ बार-बार जेब पर जाता रहता था। अपने बाल मित्रों की दृष्टि में मैं कितना महनीय बन जाता था। कृपण की इस आंतरिक प्रसन्नता तक कवि की दृष्टि कब पहुँची है? उसकी सतृष्ण दृष्टि में तो वह बौड़ा बनता ही और उसकी मजाक उड़ेगी ही।

जब शास्त्रकारों ने जीवन के चार पुरुषार्थ बतला दिये तब चयन की स्वतंत्रता सबके साथ कृपण को भी मिल गई। मुमुक्षु, धर्मध्वज, कामकामी की श्रेणी में अर्थकामी भी आ बैठा। कोई एक को वरेण्य मान व दूसरे को हेय यह कैसी दृष्टि? दोनों नेत्रों में कौन श्रेष्ठ कौन अश्रेष्ठ? विष्णु की चार भुजाओं में से कौनसी शुभ कौन सी अशुभ? मुमुक्षुओं के पतन की अनेक कहानियाँ हैं, धर्मध्वजों के स्खलनों से इतिहास भरा पड़ा है, काम-कामियों में लहनासिंह इने गिने हैं पर अर्थकामियों में भामाशाह एक-दो ही मिलेंगे। अपना जीवन जावे चला जाय, पर अपने के औषध पर अपने प्राणप्यारे को नहीं खर्चेंगे। पैरों की बिवाई घाव बन जाय, पर वे जूते नहीं पहनेंगे। सगे सम्बन्धी रुष्ट हो जायें पर कर्तव्य की बलिवेदी पर अपने प्यारे को कदापि कदापि नहीं चढ़ायेंगे और 'तजिय ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही' के महामंत्र का निरंतर जाप करते रहेंगे। खायेंगे ऐसा कि पशु जिसे सूँघकर ही तृप्त हो लें। धूपछांही वस्त्र पहनकर 'विटामिन डी' का ग्रहण करने में वे कभी नहीं चूकते। उनकी निष्ठा एवं उनका तप धन्य है।

सहज कृपण अहिंस्र होते हैं पर असहज कृपण हिंस्र हो जाते हैं। बिहारी का परिचय एक असहज कृपण से था जो न जाने किस बेवकूफी में अपनी लघु मुष्टिका पुत्रवधू को भिखारियों को अन्न दान करने का काम सौंप बैठा। सोचा था—दानी भी बन जाऊँगा और अधिक धन भी व्यय नहीं होगा। वह चूक गया। उसने अपनी पुत्रवधू की मुट्ठी ही देखी, सुन्दर वदन नहीं। सुन्दर वदन देखा भिखारियों ने। नगर के समस्त भिखारियों की भीड़ उमड़ पड़ी (अनेक रसिक भी भिखारी वेश धरकर आये होंगे पर बिहारी पहचान नहीं

पाये) और घर का आटा चुक गया। ऐसी भूल सहज कृपण कर ही नही सकता। उसकी अन य निष्ठा उस अ य किसी पुरुषाथ की ओर देखने ही नहीं देती।

बिहारी का तो नही पर मेरा परिचय एक सहज कृपण से है। उनकी पूजी पर काल मावस का ध्यान गया होता तो पूजी की उत्पत्ति के सिद्धा त मे उ हें *सशोधन करना पडता।* वे *भूमि एव श्रम के अतिरिक्त कृपणता को भी मूल* तत्व मान लेते। हाँ तो वे सज्जन एक बार बिहारी के कृपण की भूल कर बठे। एक दिन वे कह गये, 'शर्माजी शीघ्र ही आप मेरे यहाँ भोजन करेंगे।' मैं उनके अहेतुकी (?) एव अप्रत्याशित निमत्रण से चिन्ता मे पड गया पर साथ ही अपने भाग्य को बार बार सराहने लगा और उस दिन की प्रतीक्षा करने लगा जिस दिन उनका अप्राप्य अन्न बीज रूप मे मेरे उदर म पहुच कर नई वृत्ति को अकुरित करेगा। जैसा अन्न, तसा मन लोकोक्ति ने जिस आकुल प्रतीक्षा को ज म दिया उस बारह होलियाँ भी नही जला सकी हैं।

पाप मूल अभिमान से कोसों दूर रहना कृपणो को ही आता है। हम-आप तो अपने अभिमान की ऊँची कुर्सी पर बठकर न तो किसी से बात करेंगे और न किसी से मिलेंगे जुलेंगे। अपने पडोसियो से जितना बेझिझक मेल मिलाप ये रखते हैं उतना परिवार सदस्य भी परस्पर नही रखते। वे चाय मे पत्ती डालकर दूध और चीनी के लिए पडोसी के घर चले जायेंगे। चूल्हा जलाना है तो खाली माचिस म सींक उससे भरा लायेंगे। मेहमान अपने आये है, पर उनकी चाय पडोसी क घर रखेंगे। अपने धोबी को गये गम कोट के अभाव मे पडोसी का बक्स खुलवा लेंगे। बाहर रहेंगे तो माचिस की डिबिया लेकर किसी सिगरेट व्यसनी को तत्काल सहायता पहुँचाने की तलाश में रहेंगे। गाडी म चलेंगे तो अपन सहयात्री के बीवी बच्चो की सुख सुविधाओ का प्रब ध करते और परिणाम मे उसके चाय-नाश्ते मे हाथ बँटायेंगे। समाचार-पत्र आपने खरीदा है *पर य पहल पढकर वचन सवा करन को तयार रहेगे।* भद्र व्यवहार की अचूकता इनम मिलती है और वाणी की मिठास भी इनम ही। लोक व्यवहार मे इनकी वचन अदरिद्रता अनुकरणीय होती है।

बिना धन व्यय किये काम बनाना कृपणो को ही आता है। पस को उलीचकर तो मूख भी काम करवा सकते हैं। वह तो धन की महिमा है व्यक्ति की नही। कृपण व्यक्ति के महत्त्व को अक्षुण्ण रखने का कायल होता है। अब तक देश की पचवर्षीय योजनाओ मे उलीचे गये पसे ने व्यक्ति को कितना गिराया। यदि किसी कृपण के द्वारा इन योजनाओ का सचालन होता तो उसके साथ देश की प्रतिष्ठा भी बच जाती।

सुना जाता है कि योगियो ने अपनी साधना को इतनी विकसित कर लिया था कि वे बिना खाये पिये वर्षों रह जाते थे। योगी प्राय जगलो म रहते थे

जहाँ प्रकृति उनकी ऐसी आवश्यकताओं की पूर्ति सहज ही कर देती थी। इसलिए उन्होंने इसे अनुपयोगी समझकर भुला दिया। साधना के बीज मंत्र के साथ ऐसी उपलब्धि भी गोपनीय बनी रही। अब सब कृपण की दृष्टि योग शोध पर लगी हुई है। यदि शोध में सफलता मिल जाती है तो समस्त कृपणों में आनन्द छा जायेगा और तब यह देश प्रथम श्रेणी का निर्यात करने वाला बन जायेगा।

सुन्दर नीति के नाम पर जो छल पनपे हैं उनमें कृपण कभी नहीं फंसे हैं। किसी नीतिकार ने कह दिया—

पानी बाढ़ो नाव में घर में बाढ़ो दाम।
दोनों हाथ उलीचिए यह सज्जन को काम।

पर कृपण को नीतिकार की बात जमी नहीं। नाव में बढ़ा हुआ जल उसे ले डूबेगा, पर घर में बढ़ा हुआ धन आज तक किसको ले डूबा है ? टाटा बिड़ला के घर धन बढ़ गया और वे लोक प्रसिद्धि पा गये। यदि आय का स्रोत बनते ही उस आसन्न खतरा समझ कर उलीचने लग जाते तो भूखों मर जाते, कौपीन लगा लेते। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ऐसी ही नासमझी की थी। उन्हें उसका फल भुगतना पड़ा। उनके अंतिम दिन बुरे बीते। शराबी पर इस कथन का प्रभाव हो गया। उसने धन उलीचना आरम्भ कर दिया और गंदी नाली में गर्दन लटकाकर दम तोड़ दिया।

कृपण की दृष्टि को समझने की कोशिश किसी ने की ही नहीं। यदि उसकी आँखों से स्वर्ण का सौन्दर्य एवं नोटों का रूपलावण्य तुलसी देख लेते तो 'राम के नहीं दाम के भक्त बन जाते। इस देश में तो लोक को परलोक पर न्योछावर कर देने की होड़ सी लगी रही। परलोक बनाने की लालसा में सुंदरियाँ शवों के साथ जल मरीं, परलोक बनाने के लिए घरों को चौपट करके संन्यासियों ने जंगलों को भर दिया और बौद्धों ने विहारों को। गृहस्थों के विरोध में जिहाद बोल दिया गया। बेचारे गृहस्थों ने हार मानकर उनकी उल्टी सीधी बातों को ज्यों-का त्यों स्वीकार कर लिया। यम नियम समाज-व्यवहार में भी आ धमके। अपरिग्रह का पाठ गृहस्थों को खलकर पढ़ाया गया। दूसरी ओर यह भी कहा गया कि ईश्वर इतना भर दीजिए कि कुटुम्ब की उदर पूर्ति हो जावे और मैं भी भूखा न मरूँ तथा साधु भी भूखा न जावे—

साँईं इतना दीजिये जामें कुटुम समाय।
मैं भी भूखा न मरू साधु न भूखा जाय।

तब कुछ-न-कुछ तो बचाकर रखना ही पड़ेगा। किसी दुर्वासा से पाला पड़ जाये, तो खैर नहीं। परिग्रह है तो अतिथि सेवा भी हो सकेगी। वह न जाने कब आ धमके— अतिथि जो ठहरा—धन चाहिए गृहस्थ बनकर रहने के लिए। उसी से

मोक्ष मिलेगा। अत याज्ञवल्क्य न चुपके से कह दिया—

न्यायागतधन सत्वनान निष्ठो तिथिप्रिय
श्राद्धकृत सत्यवादी च गृहस्थो ऽपि विमुच्यत।

आखिर, शास्त्रो को भी लौटकर कृपण की नीति की आर आना पडा।

उस दिन भारत सरकार स जब उसकी नीति को व्यापक समथन मिला तो वह उछल पडा। उसका अभियान सरकारी अभियान बन गया। पसा बचान की बात डाकघरो दीवारो रेडियो, समाचार पत्रो म भर गई। तब कृपणो को घुटन सी अनुभव होने लगी। वह नता बनकर अनुगामी कस बनें ? अपनी प्रतिध्वनि म भी छलना दीख पडी। सरकार न पसा मांगा उसने उसे और मजबूती से पकड लिया। 5 10 प्रतिशत पर उसे कौन दे ? इतना तो उसके पास पडा सोना अनायास ही उग आयेगा। दो चार प्रतिशत मासिक हो तो बात गले उतरने वाली है। वह भी परिचितो को अहसान निमत्रण दडवत व ब्याज की कमाई की अपेक्षा के साथ। पर सरकार ने उसकी नीति को ऊपर ऊपर से ही पकडा। गहराई स पकडती तो स्व पर यवहार मे अतर न आता। जनता को कृपणता सिखाई एव स्वय बखच बन गई। उसकी नीति थी कथनी व करनी म एकरूपता पर सरकार पर उपदश कुशल ही बनी रही। इसलिए दिवालिया बन गई। अपनी साख खो बठी। सबका पैसा निकलवाकर घर मे और बाहर हाथ फलाती रही और अपनी पगडी उछलवाती रही।

अधूरे लेख को पुन आरभ करने का उपक्रम जुटा ही रहा था कि मेरा एक मित्र कमरे म आ धमका और बलपूवक लिखित अश को छीनकर पढ गया। इससे पूव कि मैं कुछ कहूँ वह कहने लगा बचारे कृपण को तुलसी ने तो लम्बे हाथो लिया ही है न्यासजी न भी उस कब बख्शा था और अब तुम उसके पक्षधर बनकर उसके पीछे पड गये। मैं अपन लख पर न्यक्त इस अनामत्रित प्रतिक्रिया के बाद उस आग बढाने का उत्साह खो बठा।

काकमुखी राजनीति

विविधता म ही मानवी मूल्य अपन नये आयाम खोजत हैं। साधारण स असाधारण व असाधारण स साधारण क बीच तक की दौड म जो सरल विरल अनुभव मिलते हैं व ही जीवन जगत के इन्द्रधनुषी कोणों को विस्तार दत हैं। त्रेतायुग म सम्पूर्ण साधुवादिता ने जीवन के बहुरगी कोणों को चबा डाला था। ऋषि मुनियों क पास भी दन नायक कुछ न बचा था। एकरसता क कुहास म प्रति योगिता की दिशाएँ लुप्त थी। व्यक्तित्व की पहिचान अलग से स्थापित नहीं हो पाती थी। जो जहाँ था बस वही था, जैसा था, बस वसा ही था। शांति अनुशासन की ठन्डी गुलामी म लाग जन रहे थे।

धरावासी अपनी व्यथा कथा लकर नारद के पास पहुचे। नारद ने उन्हें कष्ट निवारण का सहज सरल उपाय प्राप्त करने काक भुशुडी के पास भेज दिया। भुशुडी का ध्यानमग्न देख लोगों न करबद्ध हो अरदास की— प्रभो, अखियाँ खोलो और जीव मुक्ति के उपाय बताओ। क्रांति के बिना हमारी शांति अधूरी है। जीवन एकरस है और हम विवश हैं। हर आदमी को स्वग की सीढी सीधी दिखायी देने लगी है।

काकभुशुडी पखुडी की मोटाई का नाप ले अपनी आयत पुतलों को उघाडा व लोगों क मूड को निहारा। फिर आश्वस्त होकर बोले—भक्तो कष्ट विमोचन के लिए मैं अपनी काक कला के कुछ गुर तुम्ह दता हूँ। वग तो अन्य कारोबारो म भी इनके लिए प्रवश द्वार खुला रहेगा पर राजनीति की जाजम पर इन्ह परम पद प्राप्त होगा। सत्ता की माया के सप्तावरण म साधु भी स्वादी बन जाएगा। जो मूल्यदर्शी कोणा पर मडरा नहीं सकेगा, वह कस्तूरी मृग की तरह सुगंध को तलाशता ही रहेगा।

भुशुडी उन्हें काक ज्ञान का पुलिंदा थमाकर अन्तर्धान हो गए। इस सिद्धि के बाद मानवी ज्ञान के अभाव क वायुम को काक ज्ञान स भरा जाने लगा। सदियों स जमे अडियल साधुवादी मूल्यों को आसानी स उखाडना सभव भी न था। इसलिए त्रेता के शष काल म इन सूत्रों को केवल रसम अदायगी के लिए ही प्रयोग किया जाने लगा। द्वापर म व घाट घाट का पानी पीकर फलते रहे।

कलिकाल के जन्म के साथ तो परम्परागत प्रतिमान ही बदल गये और मानवी कलाओं का काका न्तर हो गया।

आज काकनीति के शामियाने के नीचे राजनीति गरम ठंडी साँसें ले रही है। इसलिए राजनीति के नये क्षितिजों (नौसिखियाओं) के ज्ञान-बोध के लिए काक बोध के नीति निदेशक सिद्धान्तों का उल्लेख जरूरी है। तदनुसार विरोधियों की उल्टी तस्वीर रखना और स्वयं को शाट कानर से बचाना इसकी ओसनस नीति का प्रतीक है। विरोधियों की उल्टी सैंकी पढ़ना और हर बात शीर्षासन लगाकर देखना इसकी अभिचार क्रिया का अंग है। खोट खेलना व ओट लेना इसके द्वैध मनन का मूल मंत्र है। चित पिट चिंतन इसकी कूट-नीति का प्रमुख छंद है। जनता के मूड के सजग पारखी बनना व उसकी बुद्धि शुद्धि के उपाय ढूँढ़ना इसका चरवेति सिद्धान्त है। सर्वजनहिताय की भावना तो काक-कला का प्रक्षिप्त अंश है जिसे ठलुए ऋषियों ने मनचीता पूरा करने के लिए गढ़ लिया है। इन उपायों की परम सिद्धि के लिए सत्ता शास्त्री में अतिरिक्त साहस की आवश्यकता है—प्रदूषण से न डरो। बस ही वायु प्रदूषण जल प्रदूषण ध्वनि दूषण और जाने कितने ही खरदूषण पीछे पड़े हैं गोमुखी जनता के। वह अपनी सर्वसह प्रकृति के कारण राजनैतिक प्रदूषण को भी झल लेगी। दल के जिस टापू पर खड़े हो वहाँ शोधयित्सु की तरह देखना चाहिए कि भविष्य उज्ज्वल है या अनिर्णयात्मकता के कुहासे में अस्पष्ट। यदि वहाँ बाजीगर बाज ही बाजी मारने वाले हों तो विकल्प की तलाश में द्वीपान्तर गमन करना चाहिए। सोते में भी खड़े रहो जगते में भी खड़े रहो क्योंकि खड़े कान खड़ी आँखें व खड़ी टाँगें ही काक कला का उत्तिष्ठत जाग्रत मंत्र है। पुच्छग्राहिता या शृंगग्राहिता के गुणों को अपनाकर व चोंच गति का प्रयोग कर सत्ता की कामधेनु को बढ़ने के लिए मजबूर करने से ही समस्याओं की वैतरणी पार की जा सकती है।

यदि आज की राजनीति का रूपांकन किया जाय तो वह काकमुखी सिद्ध होगी। काक विद्या में जो ग्लैमर है, वह अन्यत्र नहीं। जनतंत्र तो केवल वाद में ही है विवाद में तो नेतातंत्र है। जिस बालक की जन्म कुंडली में कौआ चोंच मार जाता है उसे नेतापद का अग्रिम मांगलिक पुरस्कार मिल जाता है। राजनीति के वाद चचुआ की जमात में ऐसे ही नेता कलाबूती खा रहे हैं जिनके लिए काक विद्या का माहात्म्य उतना ही माहत्त्वपूर्ण है जितना कि वणिक वृत्ति के लिए लक्ष्मी माहात्म्य।

प्रयोजनेन विना मूढोऽपि न प्रवतत—सत्ता भी अर्थवती है। अर्थवती है तभी तो मंगलमुखी है। उसका हथियाने के लिए चोंच मंथन जरूरी है। इससे अमृतपद रूप में सदानंदी कुर्सी यश के लिए बात 5 सा ण व यथार्थ की

जकड के लिए भुवनमोहिनी लक्ष्मी का दाक्षिण्य भाव रहता है।

स्वाभिमान की गुदड़ी ओढने म क्या रखा है जी ? सूखी भक्ति मे क्या धरा है जी ? झटपट रीझने वाले भगवान को तो धरती के प्रदूषणो स खतरा है। ज्ञानी को चाहिए कि वह अपने स्वाभिमान का कचुल उतार कर नेतापद की हाजरी म सरकड सा खडा रहे, क्योंकि ये रसमणि हैं। ध्यानी को चाहिए कि इनके चरणारविन्दो म साष्टाग समर्पित हो जाय, क्योंकि य रोटी के सिरजनहार हैं। वाणी की शोभा तो ठकुरसुहाती मे है, क्योंकि ये नौकरी के पटटेदार हैं। यदि कोरे स्वाभिमान म अनगपाल बने रहोगे तो जीवन रेहडी बन जाएगा और पेट वाटर लू का मदान।

मानव-दुलभ काक योनि म जन्म लेन वाला कौआ राजनेताओ का अजागुरू है। वह प्रवृत्ति माग का हामी है। यही प्रवत्ति माग राजनीति का युगधर्म है। इस प्रवत्ति माग की सीमा स्वार्थ के प्रकोष्ठको म झाँकती है। भक्ष्य अभक्ष्य का प्रश्न तो शुकशोभी है काकशोभी नहीं। नीति अनीति की भेद व्याख्या तो निवृत्ति मार्गियो के लिए है। 'प्रवत्ति यानी प्रसाद म वृत्ति निवत्ति' यानी निष्काम वत्ति। इसलिए राजनीति के प्रवत्ति मार्गी अपनी परम सिद्धि के लिए कौसनस नीति (उच्च लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए हीन काय) व अभिचार क्रिया (मारण सम्मोहन आदि के तान्त्रिक प्रयोग) का आश्रय लेत हैं। युगधम न पढ पाने वाले निष्काम मार्गियो को तो आत्म शांति पाने के लिए हिमालय की कन्दराओ म चला जाना चाहिए, बशर्ते कि वहाँ भावणमार्गियो को वापी या लीज का पट्टा न मिला हो।

कौआ अपन काक ज्ञान का पहला अध्याय डिम्बावस्था म ही सीख लेता है अडे स बाहर प्रवेश की स्थिति तो उसका दीक्षात सस्कार है। उम्र की ढलान ही अनुभव का कुतुबनुमा नही दिखाती—ऊट बूढा हुआ, पर मूतना भी न आया। युवा-दशन तो पौराणिक जड दशन के सामन यूरिया व फलित ज्योतिष को ही सम्यक दशन मानता है। युवा नताओ की बो पी तो लीजिएगा आप और पाइयेगा आप कि उनम महत्त्वाकाक्षाओ का ज्वर किसी इच्छायली ज्वार स कम नही। 'बड कौए बूढे भये, छोटे सुभान अल्लाह' की सूक्ति को चरितार्थ करते हुए ये युवा तुक कुर्सी की मछली को फँसान के लिए कल बल छल के त्रिमुखी काँटे का प्रयोग करते हैं। लेकिन राजनीति के बूढे प्रेमियो का भी मोह भग हुआ है क्या ? वे तो जन्मजात अभिनता हैं—उम्र का चौथा प्रहर भी उनके लिए जीवन का ब्राह्म मुहूत है। राजनीति गजी बन तो बने, लेकिन विग लगाकर सन्यासाश्रम की अवस्था को यो धकेला जा सकता है। लोग कहते हैं तो ठीक ही कहते होगे—जवानी म खाया बुढापे म काम आता है। इसलिए क्या बुरा, यदि जवानी के ये रसभोगी बुढ़ापे म भी टीन एजर बने रहे। इनकी उछल

कूद म भी एक रिदम है झाड़ मारने की कला है। इनकी कला की इयत्ता तो पुनपुन कुर्सी लभत म ही है। कुर्सी ही शिव-सकल्प है शिव सकल्प म ही आत्म शोध है। कुर्सी उनके लिए कुरसी है जिन्हें ढोता दकर पीठ दिखा दते है कुरसी उनके लिए है जिनके भौतिक भार को शिरोधार्य कर लेते है। कुर्सी पाट की शिव यात्रा म ही यदि किसी की शव यात्रा निकल जाय तो वह लोककथा की तरह चर्चित हो जाएगा। कोई चेयर सिंह था जो कुर्सी के लिए जिया और कुर्सी के लिए मरा। सत्ता के य सूफी कुर्सी को ही अपनी प्रमिका मानते हैं। समय का हीरामन तोता इन्हें पद्मावती गुर खूब घुटा दता है।

काकाक्षु किसने देखे हैं ? न किसी ने इन खडेश्वर महाराजों को आँख म सुरमा डालते देखा है। नित्यानंदी नेता की आँख म भी जालिम लोशन लगाने की जरूरत नहीं क्योंकि उनकी आँखें हर एगिल स जालिम हैं। व सप्लीमट्री आँखों म दूरियाँ पास बुला लेते हैं और ओरिजिनल आँखों स दूरियों तक खिंचे चले जाते हैं। अपनी जमावट के लिए विरोधियों की उल्टी सफी पढ़ना ही तो काकाक्षिगोलक न्याय है। फिरकी की तरह घूमने वाली य आँखें जब अपने कुछ उल्का कण दूसरी आँखों म डाल देती हैं तब उनके ग्लशियर की आब ही सुखा डालती है। जब प्रमातिरेक म इन आँखों की लौ दूसरी आँखों तक बढ़ जाती है तो उनका हरित दर्शन भाव ही मृगाग्रस्त हो जाता है। य कभी आकाशमुखी उग्रता कभी पातालमुखी नम्रता और कभी गायन म टेस्ट टाइप करती हुई स्वार्थों की गोल म गेंद डालने का आतुर सी उठती हैं।

राजनीति कोई फकीरों की जमात तो है नहीं उसम भी कई सदगृहस्थ हैं। भला घर की खाट खड़ी करके भी कोई दशोद्धार किया जा सकता है ? सच्चा गृहस्थ वही हो सकता है जो परमार्थ द्वारा अपनी पीढ़ियों का समस्याओं को वैतरणी स पार उतार देता है। वह जानता है कि दौलत आते समय सिर नीचा किये आती है और जाते समय दुलत्ती झाड़ जाती है। आतिथ्य सत्कार तो हमारी वामी परम्परा है इस पर पानी फिर जाने पर हमारे पास अपना रहेगा क्या ? इसी लोकधर्म का अनुसरण कर कई दौलू दौलतराम बन गये। ऐसे बस जाने कस-बस हो गये ! वह बखूबी जानता है कि इहलोक स सिमट जाने के बाद श्रद्धांजलि म जुड़े लोगों के हाथ शीघ्र ही उसका आसन ग्रहण करने वाले नये कथावाचक के आगे जुड़ जाएंगे। गत सो गत। इस चलाचली के खेल म भाई भतीजे ही तो उसके नाम की धर्मध्वजा थामे रहेंगे।

कौआ की क्या जात ! जैसी बात वैसी जात। बनारस गये तो बनारसी दास इटारसी गये तो इटारसीदास। उड़ गये तो रमते राम जम गये तो जमते राम। यही तो काक कला का वाद प्रसारण न्याय है। कौन प्यास बुझाने के लिए कच्चे घड़ की तलाश कर ही लेते हैं। भक्ता के लिए आवागमन से छुटकारा

मोन उपाय हो सकता है, पर राजप्रिय पंडा के लिए तो आवागमन ही मुक्ति का मुहावरा है। कई वर्षों स किसी दल म पद घिसाई करने वाले मठाधीश ही जब आरक्षण की तलाश मे दूसरे दलो के द्वारपालो से सिफारिशें पहुँचाने लगत हैं तब चेले चमटो की बात ही क्या ? किसी दल म यदि उनकी कलदारी आख को आवश्यक पानी न मिल तो अपना प्रतिबिम्ब देखन अन्यत्र गमन निषिद्ध या आचारसंहिता का अपहरण कसे हो सकता है ? चमरौधे घिस जाने पर बदले जा सकते हैं इसका मतलब यह तो नही है कि एडियाँ ही बदल दी जाएँ। ऐसे उठाऊ चूल्हा की तो रौप्य तुला होनी चाहिए, जो किसी दल विशेष की फ्रेम स बाहर झाँकने का दुस्साहस तो कर लेते हैं। उनकी क्या कहिए जिनकी सूइयाँ दसों दिशाओं की यात्रा कर पुन उसी कोण म फिट हो जाती हैं—उड़ि जहाज को पछी पुनि जहाज पे आवे।

मार्च म बुलबुल, मई म परवाना बन जाने वाले ऐसे ही दिलदारों की जब एक दल म 'काक रेस' होती है तो दिल का बटवारा, दूसरे दल म जब 'राज रेस (गुप्त अभियान) होती है तो दल का बटवारा। इस तरह एक दल, दो दल और अन्यय भाव से बन जाते हैं दलदल। कौआ उड़ने पर ही झाँकता है। इधर ये अतिथि आयराम गयश्याम भी अपने द्वीपान्तर गमन के अन्तराल का नाप कर ही पीछे पलटते हैं। कुछ तो अपन आकांक्षा का अनुसरण करने म ही अपना नौका नयन समझ रहे है—महाजनो येन गत स पन्था। कुछ ऐसे शालिग्राम भी हैं जो जरा से चदन तिलक स ही खुश होकर उनके समर्थन म नागफनी की तरह लव-खम खिंच जाते हैं। आप इन हंड रजस का गटापारची बबुए कह सकते हैं पर य ही पार्टी की फसल का विपक्षी घुसपैठ से रोकते हैं। तब वाक्य है — जिस दल म जितने जोडी पाँव अधिक होंगे उसकी उम्र उतनी ही लम्बी होगी। दलों के मूल नक्षत्र म पमनलिंगी स क्या फर्क पड़ता है चाहे पौआ छाप हो चाहे कौआ छाप! जिधर सख्या की फुलावट बढ जाती है सत्ता का सम्यक दर्शन भी उसी ओर खिंच जाता है।

कौआ का स्वयवर किसने देखा ? राजनीति पतिव्रता कब हुई, वह तो शक्तिवरा है। जिसकी लग उसकी दग। जिस जमाने म सख्या की फुलावट बन गयी, वह शक्तिपीठ की सचालिका बन गयी। ऊपरी ग्रेड के एम०पी० यानी मन पसद और निचली ग्रेड के एम० एल०ए० यानी मन लायक आदमी ही तो आज की राजनीति के सुहाग सिंदूर हैं। पक्षधर ही पक्षी कहलाता है— राजनीति के गगन मडल म डूबते उतराते वाले वाममार्गी-दक्षिणमार्गी ग्रहों उपग्रहों के प्रति अजिर विहारी जनता का आकर्षण बना रहता है। जब कभी मच पर उनकी बातों की रेजगारी बिखरने लगती है तब इनके दरस परस श्रवण की प्यासी जनता सूखे की प्यास को भुलाकर थोक भाव स जमा हो जाती

है। उस दईमारी को क्या पता, आज दिल्ली पास है पर सुकाल पर तो कौए के अपशकुनी पजे गड गये। कभी अखड काक धुन स भी सुकाल जन्मा है भला! दुखाडिया जनता शायद यही समझती है कि हल्ले पर हस्ताक्षर करके ही वह सुखाडिया बन सकती है।

सूरज चाहे विषुवत् रेखा पर हो चाहे कक रेखा पर कोयल का स्वभाव परिवतन की जात नही जानता। *वह आत्मकल्याणी है, अकेले ही धीरे धीरे* खाना पसन्द करती है। काक-दर के सामने अपनी लघुता लक्ष्य कर उपलब्धियो का सामूहिक नाश करन के लिए अपने काका-काकिया को न्योत देता है। यह है काक विद्या का काकोदयी सिद्धान्त। फिर तू भी खा, मैं भी खाऊ वाली बफर डिनर शुरू हो जाती है। भल ही आज क सन्दभ म आप सर्वोदय को स्वोदय कह लें, पर बताइय मौका मिलने पर भेड को कौन नही मूडता? लच मच टच ही तो भौतिक ऊर्जा व मानसिक तप्ति का साधन है।

पशुओ म हन्ना पक्षियो म कौआ और नरो म नौआ परल सिर के बुद्धिमान माने जाते हैं। जस होओ की कतार म सब ख वू खिलाडी कौओं की पचायत म सब पच और नौओ की बारात म सब ठाकुर ही ठाकुर होते हैं वस ही निद लियो की जमात म सब अलगोजिए होते हैं। नौए का उस्तरा दाढी का शक सवत *नही देखता वह तो चेहरो की आब उतार कर रूपचद कमाना भर जानता है।* हम चौडे, बाजार सकरा कहन वाल ये अघरघट निदली भी उल्टा उस्तरा चलाना खूब जानत हैं। राजनीति म राशियो का चक्कर नही। सिंह, मकर मिथुन सब अपनी क्षमतानुसार एक ही घाट पर पानी पीत हैं। समूह म रहकर भी काकश स्वतत्र रहना काक-कौशल का स्वाधीन सस्करण है वसे ही दलों की भीड म अपन व्यक्ति को जीवित रखना निदलियो की परपरा है। वे तो उन्मुक्त मारुत मडल म चन की वशी बजान म ही अपनी सकल विद्या का सार समझते हैं।

राजनीति म काक्स पहले भी थे, आज भी है। ये चार्वाक के त्रिमुखी दशन खाओ पीओ, मौज उडाओ को चहुँमुखी बनाने म योग देत हैं— शोर करो, क्योंकि शोर म ही जोर है। कौओ का दावा सावभौमिक होता है। कभी *प्रतिज्ञा के मूड म राजघाट पर मडरान लगत हैं कभी धोन के मूड म धावी* घाट पर। राजनीति म भी मरघटिया शाति नही जिन्दादिलो की शाति चाहिए। जिन्दादिलो की शाति तो धडकन के साथ उठक-पटक मे ही निहित है।

राजनीति के ये रस गधव अपनी ज मदाता जनता के निरानद क्षणो स प्रकाश वष दूर रहते हैं। जनता के गढे हुए ये नता अमृत रहते है। जनता तो मूत है, इसीलिए मूर्ति की तरह सब कुछ देखती रहती है। आजाद तो हम तब थे, जबकि हम गुलाम थे। आज तो हम अपने ही लोगा द्वारा बदी हैं।

पहले पराया जूता खोला अवश्य था, पर आज तो अपना ही जूता हमे काट रहा है।

चालाकी म अपना सानी न रखने वाला कौआ भी कभी कभी खूबसूरत ठगी के चक्कर मे आ जाते हैं। मडम कोयल जितनी सहज सरल है, उतनी ही चालाक भी। उसे काक्सुता नाम यो ही नही दिया गया। वह अपने अडे कौए के घोंसले म देती है और वह परायी आग को अपना समझ गले लगाये रहता है। जब ये अडे फूटकर भिन्नस्वराघात प्रस्तुत करते हैं तब उनका काक ज्ञान शून्य हो जाता है। राजनीति म भी प्रियसभाषिणी कोयल दूसरे खेमो म अडे देती है। जब चुनाव की गर्मी म ये फूटने लगते हैं तब उस दल के वाक्मणिशास्त्री भी मुग्धमणिशास्त्री बन जाते हैं। ये अडे उनके लिए 'बेड एग' (बेकाम के आदमी) सिद्ध होते हैं।

राजनीति के रँगिस म अच्छे से अच्छे शब्द भी मसखरी के पात्र बन जाते हैं। शब्द तो मर्यादित हैं पर अर्थ यायावर बन जाते हैं। हमारे नेता पेश आब (पानी पेश) की बात करते हैं और अर्थवेत्ता उसे पशाब समझ बठते हैं। वे मुहतर की बात करते हैं, क्रिटिक उसे मूत्र समझ बठते हैं। मसखरी कोई तस्करी तो है नही जिस पर सरकारी छापे की सभावना हो। आज देश म गोरे वायसराय गयेराम बन गए, पर देशी वायसराय कलाबूती खा रहे हैं। काव मसखरी दुरति-परति छिन जात। कौआ खुश मूड म नाचता है बाँकी अदा म अपने अक्श को निहारता है, कभी बाज के साथ भी चाव मसखरी कर धरती के गुरुत्वाकर्षण में बँध जाता है। अच्छा हुआ जो उसके नाक नही हुई, नही तो ऐनक लगाकर मसखरी कर बठता। इधर जनता का शिकायतो का उदगीत गाने का मूल अधिकार है उधर उनको भी आश्वासनमुखी मसखरी करने का अधिकार है। मसखरों के अभाव म राजनीति क कावचध्या बन जाने का डर है। ये मसखरे राजनीति की सलवटो को बिन पानी, साबुन बिना साफ करते हैं। हालांकि मसखरी की उम्र दाढी बढ़ने से कटने तक से ज्यादा नही होती, फिर भी वह कभी-कभी ऐसा रग बरपा देती है कि मन पर अयाचित मस्से उभर आते हैं और अच्छे खास चेहरे भी कार्टून-से लगने लगते हैं। राजशाही म तो मसखरी को दरबारी मान ही मिलता था, पर नेताशाही म तो इसे राष्ट्रीय मान मिल रहा है।

कौओ की दाढ़ी पेट म होती है, पुरुषो की चेहरा पर। लाढी, गाढी दाढ़ी तो बढ़ने में ही अच्छी लगती हैं। इन दाढ़ियो का भी ट्रेड मार्का होता है—भृगु दाढ़ी, द्रोण दाढ़ी, मीरजाफरी दाढ़ी आदि। कुछ दाढ़ियो का निलिसम बढ रहा होता है। जब इनका विसर्जन गगाघाट पर होता है तब ये आध्यात्मिक, जब खेमो म होता है तब गुप्तचर, जब सलून पर कटती है तब सार्वजनिक और जब

है। उस दईमारी का क्या पता आज दिल्ली पास है पर सुकाल पर तो कौए के अपशकुनी पजे गड गये। कभी अखड काक धुन से भी सुकाल जमा है भला! दुखाडिया जनता शायद यही समझती है कि हल्ले पर हस्ताक्षर करके ही वह सुखाडिया बन सकती है।

सूरज चाहे विषुवत रेखा पर हो चाहे कक रेखा पर कोयल का स्वभाव परिवतन की जात नही जानता। वह आत्मकल्याणी है अकेले ही धीरे धीरे खाना पसन्द करती है। काक-दर के सामने अपनी लघुता लक्ष्य कर उपलब्धियो का सामूहिक नाश करन के लिए अपने काका-काकियो को न्योत देता है। यह है काक विद्या का काकोदयी सिद्धान्त। फिर तू भी खा मैं भी खाऊ वाली वक्फर डिनर शुरू हो जाती है। भले ही आज क सन्दभ मे आप सर्वोदय को स्वोदय कह लें पर बताइय मौका मिलन पर भेड को कौन नही मूडता? लच मच टच ही तो भौतिक ऊर्जा व मानसिक तृप्ति का साधन है।

पशुओ म हन्वा पक्षियो म कौआ और नरो मे नौआ परले सिरे के बुद्धिमान माने जाते हैं। जस हौओ की क्तार म सब ख बू खिलाडी कौओ की पचायत म सब पच और नौओ की बारात म सब ठाकुर ही ठाकुर होते हैं वस ही निद लियाकी जमात म सब अलगाजिए होते हैं। नौए का उस्तरा दाढ़ी का शक सबत नही देखता वह तो चेहरा की आब उतार कर रूपचद कमाना भर जानता है। हम चौडे बाजार सकरा कहने वाल ये अधरघट निदली भी उल्टा उस्तरा चलाना खूब जानत हैं। राजनीति म राशियो का चक्कर नही। सिंह मकर, मिथुन सब अपनी क्षमतानुसार एक ही घाट पर पानी पीते है। समूह म रहकर भी काकश स्वतत्र रहना काक कौशल का स्वाधीन सस्करण है वस ही दलो की भीड म अपने व्यक्ति का जीवित रखना निदलियो की परपरा है। वे तो उन्मुक्त मारुत मडल म चन की वशी बजान म ही अपनी सकल विद्या का सार समझते हैं।

राजनीति म काक्स पहल भी थ, आज भी है। य चार्वाक के त्रिमुखी दशन 'खाओ पीओ, मौज उडाओ' को चहुमुखी बनाने म योग दते हैं— शोर करो, क्योकि शोर म ही जोर है। कौओ का दावा सावभौमिक होता है। कभी प्रतिज्ञा के मूड म राजघाट पर मडरान लगत हैं कभी धोन क मड म धोबी घाट पर। राजनीति मे भी मरघटिया शाति नही जिन्दादिलो की शाति चाहिए। जिन्दादिलो की शाति तो धडकन के साथ उठक पटक म ही निहित है।

राजनीति के ये रस गधव अपनी ज मदाता जनता क निरानद कोणो से प्रकाश वष दूर रहत हैं। जनता के गढे हुए य नेता अमूत रहत हैं। जनता तो मूत है, इसीलिए मूर्ति की तरह सब कुछ देखती रहती है। आजाद तो हम तब थे, जबकि हम गुलाम थे। आज तो हम अपने ही लोगा द्वारा बदी हैं।

पहले पराया जूता काटता अवश्य था, पर आज तो अपना ही जूता हमें काट रहा है।

चालाकी में अपना सानी न रखने वाला कौआ भी कभी कभी खूबसूरत ठगी के चक्कर में आ जाता है। मैडम कोयल जितनी सहज सरल है, उतनी ही चालाक भी। उसे काकपुष्टा नाम यों ही नहीं दिया गया। वह अपने अंडे कौए के घोंसले में देती है और वह परायी आग को अपना समझ गले लगाये रहता है। जब ये अंडे फूटकर भिन्नस्वराघात प्रस्तुत करते हैं तब उनका काक ज्ञान शून्य हो जाता है। राजनीति में भी प्रियसभाषिणी कोयलें दूसरे दलों में अंडे देती हैं। जब चुनाव की गर्मी में ये फूटने लगते हैं तब उस दल के काकमणिशास्त्री भी मुग्धमणिशास्त्री बन जाते हैं। ये अंडे उनके लिए 'बैड एग' (बेकाम के आदमी) सिद्ध होते हैं।

राजनीति के रंगमंच में अच्छे से अच्छे शब्द भी मसखरी के पात्र बन जाते हैं। शब्द तो मर्यादित हैं पर अर्थ मायाचार बन जाते हैं। हमारे नेता पेश आब (पानी पेश) की बात करते हैं और अक्सर उसे पेशाब समझ बैठते हैं। वे मुहूर्त की बात करते हैं किन्तु उसे मूत्र समझ बैठते हैं। मसखरी कोई तस्करी तो है नहीं, जिस पर सरकारी छापे की संभावना हो। आज देश में गोरे वायसराय गवर्नर बन गए, पर देशी वायसराय मलाबूती खा रहे हैं। काव मसखरी दुरति-परति छिन जाते। कौआ खुश मूड में नाचता है और अदा में अपने अवश को निहारता है कभी बाज के साथ भी चाव मसखरी कर धरती के गुरुत्वाकर्षण में बंध जाता है। अच्छा हुआ जो उसके नाक नहीं हुई नहीं तो ऐनक लगाकर मसखरी कर बैठता। इधर जनता को शिकायतों का उद्गीत गाने का मूल अधिकार है उधर उनको भी आश्वासनमुखी मसखरी करने का अधिकार है। मसखरों के अभाव में राजनीति के कावबध्या बन जाने का डर है। ये मसखरे राजनीति की मलघटा को बिन पानी, साबुन बिना साफ करते हैं। हालांकि मसखरी की उम्र दाढ़ी बढ़ने से कटने तक से ज्यादा नहीं होती, फिर भी वह कभी कभी ऐसा रंग बरपा देती है कि मन पर अयाचित स्मृति उभर आते हैं और अच्छे-खास चेहरे भी कार्टून-से लगने लगते हैं। राजशाही में तो मसखरों को दरबारी मान ही मिलता था, पर नेताशाही में तो इसे राष्ट्रीय मान मिल रहा है।

कौओं की दाढ़ी पेट में होती है पुरुषों की चेहरों पर। दाढ़ी, दाढ़ी-दाढ़ी तो बढ़ने में ही अच्छी लगती है। इन दाढ़ियों का भी दृढ़ मार्ग होता है—भृगु दाढ़ी, द्रोण दाढ़ी, मीरजाफरी दाढ़ी आदि। कुछ दाढ़ियों का तिलिस्म बढ़ रहा होता है। जब इनका विसर्जन गंगाघाट पर होता है तब ये आध्यात्मिक, जब खेमों में होता है तब गुप्तचर, जब सैलून पर कटती है तब सार्वजनिक और जब

किसी माँग को लकर बन्ती है तब हडताली दान्ी बन जाती है। य महर्षि अपनी दान्यिो का मुडन चाहे ग्यारह तोपो की सलामी क साथ धराधाम पर करायें चाह चाद पर पर गाला पर चाँद क क्रेटर की छाप लिए जनता कब तक इन बूढे बच्चो की मति को अपनी सहमति की छाप लगाती रहेगी ? केवल दाढी म उलझे हुए फकीर पर तो खुदा भी महरबान नही होता —

गो न दर्दे वस्ले
मा दर्वेश मादा
ठायमा मशगूल
रीश स्वश मांद।

अय मूसा यह सही है कि वह फकीर हमार दशन के बिना चन नहा पाता लेकिन दीदार कस हो सकता है क्योकि उसका दिल बार बार दाढी म उलझ जाता है। गनीमत है कि हमार राजनता मुडन की बात नही करते नही तो देश म सवतोभद्र की चेतना जाग्रत हो सकती है।

कौए आत्माराम हैं। आत्मारामी के लिए रामनामी ओढ्न की जरूरत नही। राजनीति म भी ऐम आत्मारामा का गह प्रवेश हो चुका है। विज्ञान म ज्यो ज्यो दूरियाँ कम पडती जा रही हैं त्यो त्या आत्मा के मीटर का माप भी कम पडता जा रहा है। जो आत्मा घाघ की खाल मे रहकर विराट की ओर झाकती है वह जम तुलन पन्ा कर देती है। वह तो 'स्व क कगारा क बीच लहर दोल की तरह चचल होनी चाहिये। स्थिर फ्रेम म जडता है चचल मठ पुतली म रसाद्रक है। रस प्रसूता वाणी के साथ उछलने वाली तोद का फूलना किसी हद तक ठीक है। भावुकता की लम्बाई गज फीट स नहीं, वरन तोद के घरे स मापी जाती है। कुछ गोबर गणश उनकी ताद परिक्रमा म ही स्वय को कृताथ समझ लते हैं।

कही कौए भी खेती करत दखे गय है क्या ? वे ता परान्नजीवी हैं। राज नीति म भी जब इन लगान वान्े हाथ मौजूद हा तब कौन पसीने की बदबूदार छिछली नदी मे उतरना चाहगा ? प्रतिभा पलायन हो तो होने दा क्योकि प्रतिभाओ का हस कहलान का क्या अधिकार ? यदि हस हैं भी तो कौओ के शासन म उनका क्या काम ?

कौओ का कठ कभी बठा नही दखा गया। काकरोर तो बारहमासी होती है। राजनीति भी तो वाकचाला की वाकपीठ ही तो है। ससद मे छन्द अलाप खेमा म व द अलाप और जनता म स्वच्छद अलाप ! काकरोर तब तक चलती है जब तक जनता की सहनशील प्रकृति का पारा नामल रह। इसी बात का दाँतो स पकड कर चाणक्य न कहा था— प्रकृतिकोपो हि सवकोपेभ्यो महीयान अर्थात प्रजा का कोप सबम भयकर होता है। हुकूमत जनता के मत से ही

चलती है। यदि जनता मत न दे तो ये नेता हुकू हुकू करते फिरें।

काक के भाग सराहिय जु ले गयो कान्ह के हाथ म माखन रोटी।' यदि जनता बजरबट्टू हो तो ये बजरबट्टू कौए उसके हाथ का निवाला तक छीन ले जाते हैं। जनता जब तक नहीं जानती तब तक जनता है और जब जाग जाती है तब जनार्दन बन जाती है। मीठी वाणी को लोग जजमानों की भाषा न मानकर लम्पट भाषा मानते हैं। इस गुर को कंठाग्र करके ही कौए कठफोड़ शोर कर रहे हैं। राजनीति के मुमुक्षु शिविरों म भी कांव-कांव का टेप रिकार्ड बार बार बज रहा है। बहरे तो बहरे ही रहेंगे चाहे हियरिंग ऐड लगाकर सुनें, चाहे कान उठाकर।

बैठि सगुन मनावति माता

कब आवहि मेरो लाल राम घर, कहहु काग फुरि बाता।

भारत माता भी पक्ष विपक्षाघात स पीड़ित है। उसकी आकाशी आँखें इतनी रोयी कि धरती पर बाढ़ हो आ गयी। सूखी तो इतना सूख गयी कि धरती पर सूखा भी पड़ गया। वह भी आज शगुन मना रही है कि कब ये कौए देश की सीमा स बाहर किसी निर्जन टापू पर चले जाएँगे और कब रामराज्य होगा ?

भोजन और भजन

भारत म वदिक काल स ही भोजन की अपार महिमा रही है। यद्यपि आम हि दुस्तानी की तरह मैं वेदो स अनभिज्ञ ही हू तथापि आश्वस्त जरूर हू कि एक दिन ऐसे सूक्त पडितो की सहायता मे जरूर ढूढ निकालूगा जो मेरी बात का समथन करते हो। क्योकि जब पडित लोगा न बीसवीं सदी की सारी वज्ञानिक उपलब्धिया वदो म ढूढ निकाली हैं तो भोजन जसा साधारण विषय ढूढ निकालना तो उनक लिए बायें हाथ का खेल होगा। मेरी धमनियों मे भी वही भारतीय रक्त प्रवाहित हो रहा है जो वायुयान जेट, परमाणु बम तक को वेद सम्मत कहन म सकोच नहीं करता। जिस मज के कारण वेद पढे नही हैं तो भी मैं बात बात म वेद की दुहाई देता रहता हूँ। उसी मजबरी के कारण मैं यह कह रहा हू कि भोजन की महिमा वैदिक काल स ही प्रकट है।

वेदो के बाद के ग्र था म तो भोजन के अनेक प्रसग उपल ध हैं जि हें मैंने एक शोधार्थी की तरह इक्ट्ठा कर लिया है। जसे दुर्वासा ऋषि जब अपने शिष्यो के साथ द्रौपदी के मेहमान बने तो कृष्ण को उन सबके भोजन की यवस्था करने के लिए अ न भण्डार खुलवाना पडा। कृष्ण स्वय गोपियो का मक्खन चुराकर खाते थे। भोजन के मामले मे कृष्ण सचमुच बहुत तेज थे। उ होन बचपन म जो लत पाल ली वह बडे होने पर भी नही छूटी। विदुर के यहा केले के छिलक ही चट कर गए। और तो और सुदामा क कच्चे चावलो तक का भोजन कर लिया। राम भी कम पेटू नही थ। वनवास के समय अनेक ऋषियो क यहा भोजन करने पधार गए। यहाँ तक कि शबरी क झठे बेरो को भी उ होने नही छोडा। गणेशजी आज तक हर कलेण्डर मे लडडू जीमते नजर आते हैं। बुद्ध भगवान ने तो आम्रपाली जसी वेश्या का यौता भी नहीं छोडा। हमारे देवताओ और ऋषियो ने भी जब भोजन करने म कमी नही रखी तब दादा परदादाओ ने भी किस रूप मे कमी दिखलाई होगी? आज जब देश मे अ न का अभाव है और चारो ओर भूख ही भूख नजर आती है तो लोगो को भरपेट भोजन न मिलने का कारण साफ नजर आ जाता है। इतने हजार वर्षों स जब देवता और पूवज लोग भोजन करते रहे हैं तो एक दिन तो उसे समाप्त

होना ही था। बूद बूद से घड़ा भरता है तो बूद-बूद से खाली भी हो जाता है। हमारे यहाँ अन्न पदा करने स ज्यादा भोजन की ओर ध्यान दिया गया इसीसे शस्य श्यामला धरती होने हुए भी हम विदेशी अनाज पर निभर रहना पड़ता है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम आज पैदा हुए। कृष्ण के समय पैदा हुए होते तो हमें मक्खन तक खाने को मिलता। आज खाने को तो क्या लगाने तक के लिए मक्खन उपलब्ध नही है।

भूखा आदमी चिन्तन ही कर सकता है सो मैं भी भोजन चिन्तन कर रहा हूं। सोचने पर यही बात मन मे आई कि आखिर लोग इतना अधिक भोजन कर उसे पचाते क स होंगे। कई दिनो तक उन लोगो के अपच की चिन्ता मुझे सताती रही। एक दिन रास्ते पर चलते हुए एक वैद्यजी की दुकान के बोड पर नजर पड़ी जिसे देखकर मैं चौंक उठा। लिखा था "लक्कड़ हजम, पत्थर हजम चूरन।" तुरन्त यह विचार मन मे आया कि उन भोजन भट्टो के हाजमे का रहस्य यही सूत्र है। सभी लोग डटकर भोजन करते होंगे और इस चूरन से उन्हें पचा लेते होंगे। किन्तु यह विचार अधिक समय तक टिका नही रह सका। सोचा आदमी तो रोटी खाता है उसे लक्कड या पत्थर खाने की नौबत कहाँ आती है? अलबत्ता राशन क गेहुँओ मे माईलो के साथ पत्थर जरूर मिला रहता है। अत पत्थर हजम—माईलो हजम तो फिर भी समझ मे आता है। इसी प्रकार अकाल पड़ने पर घास की रोटियाँ खाने की खबरें भी अखबारों मे छपती रहती हैं। पर इसमे क्या? घास की रोटियाँ तो हर देशभक्त को खानी पड़ती हैं। राणा प्रताप का भी घास की रोटियाँ खानी पड़ती थी। इसलिए पत्थर या घास हजम की बात होती तो मैं नही चौंकता क्योंकि भारतीय पेट पत्थर या घास पूस का तो आसानी से पचा लेता है। लेकिन लोगो को आज तक लकड़ी खाने की नौबत नही आई है। आफिसा म क्लक लोग बात बात मे दूसरो के लक्कड करने की दुहाई जरूर देते हैं पर मैंने किसी को लक्कड खाते न तो देखा न सुना है और न पढा है। सिर खपाने पर भी मैं वैद्यजी के इस विज्ञापन का कोई अथ नहीं समझ सका तो वद्यजी से ही इसका मतलब पूछने उनके पास चला गया।

मेरी बात सुनकर वद्यजी ने पहले तो मेरी नासमझी पर खुलकर एक ठहाका लगाया। फिर कहा—'आप शायद सीधे साद आदमी नजर आते हैं तभी लक्कड़ या पत्थर खाने पर आश्चय कर रहे हैं। भाई साहब! अब तो लोग इनसे भी ज्यादा विस्मयकारी और खतरनाक चीजें खाने लगे हैं। कोई सीमेंट खा रहा है तो कोई परमिट पर मिलने वाला लोहा खा रहा है। कोई जीपों की जीपें खा रहा है तो कोई जहाज के जहाज। सोने की ईंटें और आभूषण खाने वाले भी अनेक लोग आपको नजर आयेंगे। छोटे मोटे बिस्कुटों की

भोजन और भजन

भारत म वदिक काल स ही भोजन की अपार महिमा रही है। यद्यपि आम हिदुस्तानी की तरह मैं वेदो से अनभिज्ञ ही हू तथापि आश्वस्त जरूर हू कि एक दिन ऐसे सूक्त पडितो की सहायता मे जरूर ढूढ निकालूगा जो मेरी बात का समथन करते हो। क्योंकि जब पडित लोगो ने बीसवीं सदी की सारी वज्ञानिक उपलब्धिया वेदो म ढूढ निकाली हैं तो भोजन जसा साधारण विषय ढूँढ निकालना तो उनके लिए बायें हाथ का खेल होगा। मेरी धमनियों मे भी वही भारतीय रक्त प्रवाहित हो रहा है जो वायुयान जैसे परमाणु बम तक को वेद सम्मत कहने म सकोच नही करता। जिस भय के कारण वेद पढे नहीं हैं तो भी मैं बात बात म वेद की दुहाई देता रहता हूँ। उसी मजबरी के कारण मैं यह कह रहा हू कि भोजन की महिमा वदिक काल स ही प्रकट है।

वेदो के बाद के ग्रथो म तो भोजन के अनेक प्रसग उपलब्ध हैं जिन्हे मैंने एक शोधार्थी की तरह इकट्ठा कर लिया है। जैस दुर्वासा ऋषि जब अपने शिष्यों के साथ द्रौपदी के मेहमान बने तो कृष्ण को उन सबके भोजन की व्यवस्था करने क लिए अन्न भण्डार खुलवाना पडा। कृष्ण स्वय गोपियो का मक्खन चुराकर खाते थे। भोजन के मामने मे कृष्ण सचमुच बहुत तेज थे। उन्होंने बचपन मे जो लत पाल ली वह बडे होने पर भी नही छूटी। विदुर के यहा केले के छिलके ही चट कर गए। और तो और सुदामा के कच्चे चावलो तक का भोजन कर लिया। राम भी कम पेटू नही थे। वनवास के समय अनेक ऋषियो के यहा भोजन करने पधार गए। यहाँ तक कि शबरी के झूठे बैरो को भी उन्होने नही छोडा। गणेशजी आज तक हर कलेण्डर मे लडडू जीमत नजर आते हैं। बुद्ध भगवान ने तो आम्रपाली जसी वेश्या का न्यौता भी नहीं छोडा। हमारे दवताओ और ऋषियों ने भी जब भोजन करने मे कमी नहीं रखी तब दादा-परदादाओ ने भी किस रूप म कमी दिखलाई होगी? आज जब देश म अन्न का अभाव है और चारो ओर भूख ही भूख नजर आती है तो लोगो को भरपेट भोजन न मिलने का कारण साफ नजर आ जाता है। इतने हजार वर्षों स जब देवता और पूवज लोग भोजन करत रहे हैं तो एक दिन तो उसे समाप्त

होना ही था। बंद बूंद से घड़ा भरता है तो बूंद-बूंद से खाली भी हो जाता है। हमारे यहां अन्न पैदा करने से ज्यादा भोजन की ओर ध्यान दिया गया इसीस शस्य श्यामला धरती होते हुए भी हमें विदेशी अनाज पर निर्भर रहना पड़ता है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम आज पैदा हुए। कृष्ण के समय पैदा हुए होते तो हमें मक्खन तक खाने को मिलता। आज खाने को तो क्या लगाने तक के लिए मक्खन उपलब्ध नहीं है।

भूखा आदमी चिन्तन ही कर सकता है सो मैं भी भोजन चिन्तन कर रहा हूं। सोचने पर यही बात मन में आई कि आखिर लोग इतना अधिक भोजन कर उसे पचाते कैसे होंगे। कई दिनों तक उन लोगों के अपच की चिन्ता मुझे सताती रही। एक दिन रास्ते पर चलते हुए एक वैद्यजी की दुकान के बोर्ड पर नजर पड़ी जिसे देखकर मैं चौंक उठा। लिखा था "लक्कड़ हजम, पत्थर हजम चूरन।" तुरन्त यह विचार मन में आया कि उन भोजन भट्टों के हाजमे का रहस्य यही चूरन है। सभी लोग डटकर भोजन करते होंगे और इस चूरन से उन्हें पचा लेते होंगे। किन्तु यह विचार अधिक समय तक टिका नहीं रह सका। सीधा आदमी तो रोटी खाता है उसे लक्कड़ या पत्थर खाने की नौबत कहां आती है? अलबत्ता राशन के गेहूँओं में भाईलो के साथ पत्थर जरूर मिला रहता है। अतः पत्थर हजम—भाईलो हजम तो फिर भी समझ में आता है। इसी प्रकार अखबार पढ़ने पर घास की रोटियां खाने की खबरें भी अखबारों में छपती रहती हैं। पर इसमें क्या? घास की रोटियां तो हर देशभक्त को खानी पड़ती हैं। राणा प्रताप को भी घास की रोटियां खानी पड़ती थीं। इसलिए पत्थर या घास हजम की बात होती तो मैं नहीं चौंकता क्योंकि भारतीय पेट पत्थर या घास-फूस को तो आसानी से पचा लेता है। लेकिन लोगों को आज तक लक्कड़ी खाने की नौबत नहीं आई है। आफिसों में क्लर्क लोग बात बात में दूसरों के लक्कड़ करने की दुहाई जरूर देते हैं पर मैंने किसी को लक्कड़ खाते न तो देखा, न सुना है और न पढ़ा है। सिर खपाने पर भी मैं वैद्यजी के इस विज्ञापन का कोई अर्थ नहीं समझ सका तो वैद्यजी से ही इसका मतलब पूछने उनके पास चला गया।

मेरी बात सुनकर वैद्यजी ने पहले तो मेरी नासमझी पर खुलकर एक ठहाका लगाया। फिर कहा—"आप शायद सीधे सादे आदमी नजर आते हैं तभी लक्कड़ या पत्थर खाने पर आश्चर्य कर रहे हैं। भाई साहब! अब तो लोग इनसे भी ज्यादा विस्मयकारी और खतरनाक चीजें खाने लगे हैं। कोई सीमेंट खा रहा है तो कोई परमिट पर मिलने वाला लोहा खा रहा है। कोई जीपों की जीपें खा रहा है तो कोई जहाज के जहाज। सोने की ईंटें और आभूषण खाने वाले भी अनेक लोग आपको नजर आवेंगे। छोटे मोटे बिस्कुटों की

तरह सोने के बिस्कुट तो लोग बात की बात म खा जाते हैं। बाबू लोग स्टेशनरी खा जाते हैं तो अफसर लोग फरनीचर। इसलिए जरा आखें खोलकर चारो तरफ दखिये कि लोग बाग क्या क्या चीजें नही खा रहे है। लोगो मे मानो खाने की होड सी लगी हुई है। खरबूजे को दखकर खरबूजा रग बदलता है। किसी का एक चीज खाते देखकर दूसरे की भूख जाग पडती है और वह भी कोई चीज खाने लगता है। जो लोग खाना थोडा सा ठण्डा या बेस्वाद होते ही बीवी स लड पडत हैं वे भी इन चीजो को खाते समय ठण्डा गरम स्वाद बस्वाद कुछ नही देखते हैं। बस लपालप खाने मे लगे रहते हैं। ऐसी अभक्ष्य चीजें खान पर उनम सुस्ती आलस्य क रूप मे रोगा क चिह्न दिखायी देने शुरू हो जात हैं। फिर किसी का अपच हो जाती है, किसी का म दाग्नि और किसी को आफरा हो जाता है। ऐस मरीजो के लिए मेरा यह चूरन रामबाण दवा है। मेरे इस नुस्खे से वे सब कुछ हजम कर जाते हैं। उन्होन बात समाप्त करत हुए कहा—'लीजिये आप भी यह चूरन खाइये। मैं बाला— नही मेरा हाजमा एकदम दुरस्त है क्योकि मैं तो सिफ रोटी खाता हू।

उनकी बाता से पूरी तरह प्रभावित होते हुए भी मैं अपने अह को एक साधारण स वद्य के सामने डूबने नही देना चाहता था। एक आदश इटेलेक्चुअल की तरह उनसे हार मानकर हथियार नही डालना चाहता था। इसलिए अपनी विद्वत्ता झाडते हुए बोला—वैद्यजी आपकी बात शतप्रतिशत सही होते हुए भी दोषपूण है। आपकी बातो से लक्कड हजम की बात सिद्ध नही होती। आपने जब बोड पर लक्कड हजम लिख रखा है तो आपके पास उचित तक भी होना चाहिए कि लोग लक्कड कस खात हैं कि उसे पचाने के लिए व आपका चूरन खाएँ। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि स्वतत्र भारत म कोई व्यक्ति लक्डी या लक्कड नही खाता। क्योकि हमारे यहाँ लक्डी स अब सिफ एक चीज बनती है और वह है कुर्सी। देश मे कुर्सियो की इतनी अधिक माँग है कि उसकी पूर्ति नही हो पा रही है। किसी भी दफ्तर म चले जाइये वहा लोग कुर्सियो के लिए छीना झपटी करत नजर आयेंगे। हर कोई बडी स बडी कुर्सी हडप लेना चाहता है। कुल मिलाकर देश म लकडी स सिफ कुर्सी बनती है और उस पर सभी की निगाह टिकी रहती है। अत जिस चीज पर सभी लागो की निगाह हो उसे कोई चौडे धाडे खा नही सकता। याने आजकल लकडी या लक्कड कोई नहा खाता अस्तु लक्कड हजम की बात उपयुक्त नही है। यदि आप लिखना ही चाहते हैं तो या लिखिये— रिश्वत हजम गबन-हजम चूरन। हमारे इस लाजवाब चूरन मे सभी प्रकार की रिश्वत और गबन हजम हो जाते हैं। इसको सेवन करन वाले व्यक्ति को सलटेक्स इनकम टैक्स लाकल टेक्स जस भयानक रोगो स मुक्ति मिल जाती है। वह किसी प्रकार की चिन्ता परेशानी स मुक्त

होकर पूरी तरह स्वस्थ और नीरोग हो जाता है।' वैद्यजी ने मेरी बात मान ली और मैं आत्मतुष्ट होकर वहां से चल पड़ा।

रास्ते में मेरा ध्यान पुन वैद्यजी की बातों पर चला गया। मन म सोचा सचमुच लोग आजकल क्या-क्या नहीं खा रहे हैं। मानो भोजन रोग की महामारी ही फैल गई है। सभी की भूख जाग्रत हो गई है। एक व्यक्ति को कुछ खाता देख उसकी छूत से दूसरे का मन भी ललचाने लगता है। उसके भी मुह मे पानी भर आता है और वह भी लार टपकाने लगता है। इस प्रकार एक खरबूजे को देखकर दूसरा खरबूजा भी रग बदलने लगता है। हर एक को अपनी थाली म रूखी सूखी रोटियाँ नजर आती हैं तो दूसरे की थाली म घी ही घी दिखाई देता है। फिर वह भी अपनी थाली म भी घी रखने के लिए दौड धूप करने लगता है। इस प्रकार दूसरा व्यक्ति भी भाग दौडकर अपना हिसाब बैठा लेता है। पहले वह बेड टी की आदत पालता है, फिर नाश्ता करने की लत पड जाती है और तीसरी अवस्था म भूख बढ जाने पर वह भी लच और डिनर लेने लगता है। उसके प्रयासो म भोजन की एक नई दिशा आविष्कृत हो जाती है। आज की दुनिया के इन नये व्यजनो की यदि लिस्ट बनाई जाय तो वह बडे से-बडे होटल के 'मीनू' से भी बडी हो जाती है। इन नये भोजन के व्यजनो को खाने क तरीके भी बदल गए हैं। पहले की तरह अब कोई व्यक्ति घर म चौके म बठकर भोजन नहीं करता। अब तो सभी लोग बफे लेते हैं। सारा देश ही बफे की सजी हुई टेबिल है जिस पर भूखे भेडिये की तरह लोग टूटे पड रहे हैं और प्रेमपूर्वक भोजन प्राप्त कर रह हैं।

पुराने समय म मथुरा या बनारस के चौबे, पडित लोग भोजन भट्ट के रूप म मशहूर थ। ये लोग विवाह ओसर मोसर श्राद्धपक्ष इत्यादि भोजन प्रतियोगिताओ मे पेशेवर खिलाडियो की तरह उतरते थे और अनेक नए कीर्तिमान स्थापित करते थे। कोई सौ लड्डू खा जाता था तो कोई पाँच सात सेर हलुआ। इसी प्रकार कोई खडी के कुल्हड के-कुल्हड हडप कर जाता था। ऐसे धुर धर खावको की चर्चा आम जनता श्रद्धापूर्वक किया करती थी। आज वे भोजन प्रतियोगिताए बन्द हो चुकी हैं क्योकि उनके आयोजको क हौसले पस्त हो चुके हैं। लेकिन भोजन भट्टो ने हार नहीं मानी है। इन्होने बदली हुई परिस्थितियो मे नई मौज प्रतियोगिताए ढूढ ली हैं। ओसर मोसर, श्राद्ध आदि के भोजन बन्द हो गए हैं तो क्या, उनकी जगह देश के नवनिर्माण म बनने वाले कारखानों, इण्डस्ट्रियो व्यापार आदि ने ले ली है। चारो ओर नहरें, बाँध, तालाब, सडकें आदि निर्मित हो रहे हैं। य ही वे नयी प्रतियोगिताएँ हैं जिनमे आज के भोजन भट्ट पूरी तयारी के साथ उतरते हैं और पूरी तरह तृप्त होकर उठते हैं। आम जनता अब पुराने खावक पडा, पडितो के भोजन की चर्चा

भूलकर अब उन अफसरो, नेताओ की बातें करती है जो सो दो सो बोरी सीमट खा जाते हैं पचासा टन इस्पात जीम जात हैं। भृगु ऋषि ने तीन चुल्लू म सारे समुद्र का पान कर लिया था। भारत मे समुद्र निर्माण की कोई योजना अभी तक नहीं बनी है जिससे यह पता लग सके कि आज भी सारा समुद्र पी जाने वाले लोग मौजूद हैं या नही पर कुओ, तालाबो नहरों को पी जाने वाले अनेक धुरधर ठकेदार इजीनियर अफसर मौजूद हैं। ये लोग इनका सारा-का-सारा पानी पी जाते हैं वह भी इतनी सफाई स कि उनम पानी की एक बूद तक पीछे नहीं बचती। केवल सरकारी फाइलो से ही पता चलता है कि उन स्थानों पर कभी कुए-तालाब आदि खुदवाए गए थे।

आज के ये भोजनभट्ट जब पगत म बठते हैं तो पूरी तरह तप्त होकर ही उठते हैं। भूखी जनता इस पगत के चारा ओर कौओ की तरह काँव काँव करने लगती है। परन्तु पगत के रहते जनता का वस नहीं चलता। पुलिस आती है और लाठी चाज करती है तो काँव-काँव करते कौए बिखर जाते हैं फिर भी यदि कौए नही उडते हैं तो फिर सरकारी जाँच आयोग बैठाया जाता है, जो डाक्टर की तरह पगत म बठे उन ठेकदारों इजीनियरो अफसरो नेताओ का पेट चीरकर देखता है। तब किसी के पेट म से दस मील लम्बी सडक निकलती है किसी के पट म से लम्बी चौडी नहर, किसी के पेट म से कूआँ-तालाब निकलता है तो किसी के पेट म से पूरा कारखाना ही बाहर निकल आता है। पेट चीरकर देखने की नौबत इसलिए आती है कि य लोग तोंद पर हाथ फेरते हुए आराम से बठकर भोजन नही करते बल्कि आज के भोजन भट्ट गाय की तरह फटाफट भोजन चर लते हैं फिर आराम से बठकर जुगाली करते रहते हैं।

भोजन करने वालो के बारे म इतना विचार कर लेने पर भी मन ने सोचना बन्द नहीं किया। फिर मन म यह दूसरा प्रश्न उठा कि जिन लोगो को भोजन नसीब नही होता वे क्या करते हैं? इस प्रश्न के साथ ही मन से यह उत्तर भी आया कि ऐसे लोग भजन करते हैं। अथात जो लोग खोटे भाग्य के कारण भोजन नही कर पाते वे लोग भजन करते हैं। प्राचीन काल से ही हमारे यहाँ अनेक योगी महात्मा, साधु भक्त होते रहे हैं जिन्होने भजन करने म ही सारा जीवन लगा दिया। भोजन भट्टो की तरह भजन भट्टा की भी इस देश म कोई कमी नही रही है। भक्त प्रहलाद ध्रुव नरसी भगत कबीर सूर तुलसी मीरा गाधी सभी न भजन ही तो किया है। इनके चित्र देखने से ही प्रतीत हो जाता है कि इन लोगो का भोजन से कोई वास्ता नही था। सभी के पट पिचके हुए दिखाई देते हैं सभी के शरीर म हडियो के ढाँचे के अलावा और कुछ भी नजर नही आता। यद्यपि भजन के सम्बन्ध मे यह कहावत मशहूर है— भूखे भजन न होहि गोपाला, ये लो कठी, ये लो माला। तथापि यथाथ

जगत मे यही दिखाई देता है कि सिर्फ भूखा ही भजन करता है। आजकल मंदिरो के बाहर तीर्थ स्थानो पर, फुटपाथो पर भजन करने वालो की भीड लगी रहती है। हाथ मे करताल, मंजीरे आदि लेकर ये लोग भगवान के लिए भजन करते हैं या रोटी के लिए, यह किसी से छुपा नही है। दूसरे लोग भी जिनको भोजन करने का सौभाग्य प्राप्त नही होता, रामनामी दुपट्टा ओढ लेते हैं और भजन करने लगते हैं। वैसे ज्यादातर लोग बगुला भगत होते हैं क्योकि अवसर मिलने पर वे भोजन करने म भी सकोच नही करते। इतना चिन्तन करने पर मन म यह निष्कर्ष निकला कि जैसे एक म्यान म दो तलवारें साथ नही रह पाती बस ही एक ही व्यक्ति दोनो कार्य नही कर सकता। इसीसे भोजन करने वाले भोजन करते है और भजन करने वाले भजन।

सारे रास्ते भर ये ही विचार मन म आते रहे। घर पहुँचते ही पत्नी ने भोजन परोस दिया। उस दिन न जाने कैसी भूख जाग्रत हुई कि मैंने एक सच्चे भोजन भट्ट की तरह डटकर भोजन किया और पत्नी के लिए भजन करने की स्थिति पैदा हो गई।

करामात दाढी की

लोग मुझे अच्छी तरह जानते हैं। जानें भी क्यों न भला आखिर मैं एक जानी मानी हस्ती जो हू। चाहे वे मुझे शक्ल-सूरत से जानते हो या न जानते हो पर नाम से मुझे अवश्य जानते होगे। अगर नाम से न भी जानते होगे तो मेरी दाढी से सभी परिचित होगे। दाढी की बात और दाढी की करामात के चर्चे तो बच्चे-बच्चे की जबान पर हैं फिर भी लोग मेरी इस हस्ती को जलवा नही मानते। मैं जरूर इस दाढी की करामात का कायल हूँ। यह कमबख्त जब बढती है तो कुछ न कुछ गजब जरूर ढाती है। मैं तो महज इस दाढी की वजह से पापुलर हो गया हूँ इसी के बलबूते पर जब तब मैं उखाड-पछाड की घोषणा कर दिया करता हूँ। मेरे बॉस भी मुझसे कतराते रहे हैं लेकिन इस दाढी के सहारे ही मैंने ऐसी पठ जमाई कि जिन बास का सितारा अस्त हो गया था वे फिर चमक उठे। जब वे मुझसे कतराते रहे तब हम हमारे थे वे उनके थे। तब मैंने बास के प्रति अपनी वफादारी का इजहार कर दिया। अब आपको राज की बात बता दू कि जब बास का सितारा अस्त हुआ था तब जोड तोड बिठा कर बास को फिर भीतर कर दिया अर्थात उनका बाइज्जत फिर से प्रमोशन दिया इस इरादे से कि जिस काम को लाट सा० ने हम सौंपा था उसको हम जब पूरी तरह नही कर पाए ता उन्होने हमारा पत्ता काट दिया। चुकि लाट सा० ने हमारी अफसरी छीनी थी इसीलिए उन्हें सबक सिखाया जाता था। बात की बात म तय हो गया कि तुम भीतर रहकर काटोगे और मैं बाहर रहकर पटाऊगा। बस मौका देख कर वह पटकनी दी कि लाट साहब और उनके साथी चारो खाने चित्त हो गए।

देखा न आपने जो भीतर रहकर यह कह दे कि मेरा उसमे कोई सम्बन्ध नही है वही बास फिर मुझसे आ मिला। भला रामायण का राम भी बिना हनुमान के नही रह सका तो कलियुगी राम हनुमान की बात कसे नही मानता। महत्वाकाक्षा बडी चीज होती है। राजनीति क्या क्या गुल नही खिलाती। पद की भूख बास को मेरे खेमे मे ले आई। टूट हुए सम्बन्धा का इजहार कर देना तो महज हमारी चाल थी। बस दम लगा और खिसके। तुलसी बाबा ने भी कहा था—

सुर नर मुनि जन की यह रीति।
स्वारथ लागहि करहि सब प्रीति ॥

पद प्राप्ति में स्वार्थ ने बॉस को भी मेरे इशारा पर नाचने को बाध्य कर दिया। इसम मेरा अपना कोई करिश्मा नही था। मैं तो यह सारा करिश्मा इस दाढी का ही मानता हूँ। न तो मैं कोई मान्त्रिक हूँ, न कोई तान्त्रिक ही हूँ। लोग यह भ्रम पाले हुए हैं तो पाले रहें। मुझे कोई एतराज नही। मेरी चाल तो वही बेढगी जो पहले थी अब भी है।

हाँ, इस दाढी के बारे मे एक बात और बता दू। मैंने इस खिचडी दाढी को घासलेट या अन्य हल्के पुल्के तेल पिला कर नही पनपाया है। इसे पनपाया है लखनवी अदाओ से कनौज के इत्र फुलेल स। जब यह पनपती है तो किसी के खिसकने का पैगाम लेकर पनपती है। उसका पत्ता कटा और दाढी भी सफाचट। जिस जिसको मैंने इत्र लगाया इत्र की महक स उसका माथा भनाया या नही पर वह सडक छाप जरूर हो गया था। जब बॉस ने मुझसे हाथ मिलाया था तब भी मैंने इसी इत्र का उपयोग किया था। कमबख्त इस इत्र ने अपनी अस लियत तो जाहिर कर दी लकिन बास की चमक गायब कर दी। लोग कहन लगे लालकिले पर चढा कर तुमने बास को कुतुबमीनार से गिरा दिया। इसमे मेरा और मेरी दाढी का कोई दोष नही। अगर कमाल दिखाया होगा तो इत्र की महक ने ही दिखाया होगा। अब दाढी की तरह लोग मेरे इत्र को दोष दें तो देते रहें मैं तो बास का 'लेफ्ट राइट' हूँ। मेरी औकात स बॉस परिचित हैं। इसलिए मेरी दाढी और इत्र से उ ह कोई नुकसान होने वाला नही है। खुदावन्द नेक परवरदिगार ने चाहा तो बास का सितारा फिर से बुलद होगा, चमक फिर से लौट आएगी। हाँ, अबकी बार मैं विश्वास दिलाता हूँ कि कोई इत्र नही लगाऊँगा।

एक मुहावरा है—चोर की दाढी मे तिनका होना। ये हिन्दी वाले भी गडबड हैं, कुछ भी कहते रहते हैं। हिन्दी स मुझे एलर्जी तो नहीं है लेकिन हवा का रुख देखकर अग्रेजी वालो को पटाने के लिए मैं कुछ का कुछ बोल जाता हूँ। अन्य राजनीतिज्ञों की तरह मेरे भाषणो का अध्ययन नहीं करना पडता है। लोग चाहे कुछ भी कहते रह, मैं तो गुटकते गुटकते महादेव हो गया हू इसलिए लोगों की बातें सुन सुन कर तग आ गया हूँ। इसीलिए जब तब जो सो मन म आता है कह दिया करता हूँ।

हाँ, तो बात चोर की दाढी मे तिनके की चल रही है। तिनका तो उनके होता है जो चोर होते हैं। मेरी दाढी म इत्र लगा होता है इत्र। एक लोकप्रियता का बाना पहनने के लिए चोरी करने वालो के कारनामो को उजागर करने के लिए मेरे हथौडा छाप भाषणो का इतना कारगर असर होता है कि लोग यह

समझाते हैं कि जो कुछ मैं कह रहा हू वाकई वह शत प्रतिशत सही है। दर-असल मैं कह देता हूँ कि जो कुछ मैं कह रहा हू उसके प्रमाण मेरे पास हैं। हकीकत तो मैं जानता हूँ कि मेरे पास कोई प्रमाण नही होते। आप ही सोचिए मैं कोई मूख हूँ जो प्रमाण थैली म बद करके बैठा रहता। जनता जनार्दन के सामने उनको न लाता। अजी जनाब प्रमाण अगर मेरे पास होते तो कभी की फोटो स्टेट कापियाँ अखबार वालो को न दे देता !

यह तो जनमत को अपनी ओर खीचने का एक तरीका है। शुरू-शुरू म लोगो ने मेरी बातो का मजाक भी उडाया पर सौ बार एक झूठ को दोहरा दिया जाए तो वह भी सच हो जाता है। बस यही टेकनीक काम म ले लेता हूँ। बस इसी टेकनीक स असलटप्पू बात कह कर मैं अपने विरोधियो के मुह बन्द करने की कोशिश करता हूँ। मैंने कही पढा था कि हवा का असर मूर्खों की जमात पर बहुत जल्दी होता है तब जाकर जनतत्र फलता फूलता है। जो कुछ मैं कहता हूँ उसको इस प्रकार दहाड कर अपनी बात सुनाता हूँ कि मेरी बात उनके गले इस डिग्री पर उतर जाती है कि मुलम्मा चढ़ा रह जाता है और कलई भी नहीं खुलती।

राजनीति के रग म मैं शुरू स रगा हुआ हू, हसिया और हथौडा, इनको मैंने कभी देखा भी नही। यह बात कहने म मुझे कोई सकोच नही कि राज नीति मे मैंने हर बार मात खाई है। कहते हैं कि बारह साल म घुन के भाग्य फिरते हैं पर मेरे भाग्य की क्या कहू तीस वष म फिरे। बात की बात म पासा पलट गया और बदली हुई हवा ने मुझे जिला दिया।

राजनीति म जिन्दगी गुजारने की कसम खाई थी सो कई बार जेल भी जा आया। मेरी हरकतो को देख कर लोग मुझे सनकी पागल बहुरूपिया और मसखरा और न जाने क्या क्या कहते हैं। मुझे इससे कोई मतलब नही। मैं तो आम खाने स काम रखता हूँ मैं पेड नही गिना करता। इसी सिद्धान्त को ध्यान म रखकर मैं राजनीति का धुर धर बन गया हूँ। और लोग मेरा जलवा मानें या न मानें पर तीन तीन लाटो को मैंने धूल चटवा दिया है इसलिए वे तो मेरा जलवा मानगे ही। कुछ लोग तो मेरे मसखरेपन को देखकर भडक उठे हैं यहाँ तक कि मुझसे दगल करवाने के लिए किसी मसखरे को ही तयार कर रहे हैं। चूकि एक जगल म दो शेर नही रह सकते उसी तरह एक अखाडे से दो मसखरे नहीं लड सकते। अगर ऐसा हुआ तो अखाडे म न उतरने की घोषणा कर दूगा। इस घोषणा करने से भी लोग मुझे मसखरा ही कहेंगे।

मुझे राजनीति का बहुरूपिया कहा जाता है तरस आता है मुझे इन लोगो की बुद्धि पर कि गिरगिटिया राजनीति म अगर कोई गिरगिट की तरह रग नहीं बदलता मौके का फायदा नही उठाता', भला वह भी क्या राजनीतिज्ञ

हुआ। उसे तो राजनीति से सन्यास लेकर किसी कन्दरा मे डेरा डाल देना चाहिए। आप कहेंगे, पहले मैंने ऐसा नही किया अब क्यो इस तरह की बात कर रहा हूँ। मैंने भी हवा का रुख देख कर ही काम किया है सिद्धान्त टूटे तो भले ही टूटे, हलवा खाते दाँत घिसें तो घिसें मतलब पूरा होना चाहिए। बात मसखरेपन की चल रही है। एक मसखरा अपनी जिन्दगी मे सिरियस कभी नही रह सकता वह तो मसखरा बनकर ही जीता है और मसखरापन ही उसकी जिन्दगी का गुर होता है।

एक फिल्म देखी थी—तौबा तौबा, मैं झूठ बोल गया भला 'जोकर' फिल्म देखने की मुझे क्या जरूरत थी, देखी नही एक गाना सुना था 'ऐ भाई जरा देख के चलो'—उसी गाने में आगे कहा था— ये सरकस है तीन घंटे का गाने मे कहा था—'यहाँ हीरो से जोकर और जोकर से हीरो बन जाते हैं'— बस उस फिल्म मे सरकस की दुनिया को चित्रित किया था। मैंने भी रिंग मास्टर की तरह छंटे उठाए कलाकारो को अपने खेमे में इकट्ठा किया और 'राजनीति का सरकस' शुरू कर दिया। गीत की पहली पंक्ति भूल गया— ऐ भाई जरा देख के चलो' जल्दी मे जो कलाकार मेरी दाढी की करामात को जानते थे। वे मेरे खेमे मे आ मिले—काम शुरू हुआ। सरकस चला पर यह सरकस तीन घंटे का नही अपितु तीन सप्ताह का था। वास्तव मे इस राजनीति के सरकस ने हीरो से जोकर और जोकर से हीरो बना दिया था। अब तो आप भी मेरी दाढ़ी का जलवा मानने लगे होंगे। अगर न मानें तो भले ही न मानें पर असलियत तो यही है कि मैं इस दाढी को जब सफाचट कराकर जब आदत के मुताबिक बार बार हाथ फेरता हूँ तो लगता है गजब ढाने का हथियार गंगा किनारे छोड आया हूँ।

इतना सब होते हुए भी मेरी लपर चपर करने वाली जबान बदस्तूर चलती रहती है। चाहता हूँ 'वाचा सिद्धि' का आलम मुझे प्राप्त हो जाए तो मैं गजब ढा दूं।

राजनीति मे बड़ों बड़ों को पापड बेलने पडते हैं। मैंने भी कम पापड थोडे ही बेले हैं। बिल्ली के भाग्य से छींका टूट पडा इसी बल बूत पर मैं उखाड पछाड करता रहता हूँ। राजनीति में रंगे राजनेताओ के पास डबल पावर' होता है, बस यही मान लीजिए मेरे पास भी डबल पावर है जिसके कारण मैं लपर चपर करने वाली जबान पर लगाम नही रख पाता। चाहे बात अच्छी लगने वाली हो या बुरी लगने वाली हो, चाहे बात संवैधानिक हो या असंवैधानिक लेकिन इस दाढी के बलबूते पर मैं तो बोल देता हूँ अंजाम की परवाह मैं नहीं किया करता।

काफी देर से अपने बारे में बहुत कुछ कह गया। आप भी अगर महसूस

एक इण्टरव्यू

पण्डित कलानाथ 'कलेश' जब परलोकगामी होने लगे तो उनके साहित्यिक बन्धु-बान्धवों तथा "चिर परिचितों" ने घेर लिया। बन्धु बान्धव उनकी साहित्यिक सेवाओं की सराहना करते हुए घष्ट आलोचकों को कोसने लगे कि उन्होंने कलेशजी की युगद्रष्टा लेखनी को नहीं पहचाना। पहचान लेते तो कलेशजी युग प्रवर्तकों की श्रेणी में आ जाते। चिर परिचित समुदाय सम्पादकों और प्रकाशकों पर गुस्सा उतारने लगा कि उन्होंने कलेशजी जैसे दिग्गज साहित्यकार की रचनाओं का समय रहते प्रकाशन नहीं किया वरना आज 'उन्हें' यह दिन नहीं देखना पड़ता। (पाठक वृन्द! यहाँ 'उन्हें' शब्द का श्लेष द्रष्टव्य है—उन्हें यानी कलेशजी को यह दिन नहीं देखना पड़ता अर्थात् वे अकाल मृत्यु के लिए विवश नहीं होते और उन्हें यानी चिर परिचितों को यह दिन नहीं देखना पड़ता अर्थात् उनकी उधारी का हिसाब कभी का साफ हो गया होता।) कलेशजी की साँस न जाने किसमें अटकी हुई थी। वे सोच रहे थे कि एक रससिद्ध कवि की पंक्ति पर— जा दिन मन पंछी उडि जैहै ता दिन तन-तरुवर के सब पात झरि जहैं। तन तरुवर के पात तो झरने जा रहे थे पर मन पंछी के पंख न जाने किस सरेस से चिपक गये थे कि उड़ ही नहीं पाता था बेचारा। कलेशजी चारों तरफ देखते और गहरी निश्वास छोड़ते। उपस्थित समुदाय के लिए यह मर्मान्तक पीड़ा का क्षण होता। एक बन्धु ने साहस करके पूछ ही लिया— कलेशजी, आप इतने व्यथित क्यों हैं? प्रभु सब अच्छा करेगा। आपकी कोई इच्छा (अन्तिम) हो तो कहिए।' कलेशजी बुदबुदाये— का फी।" काफी बनवाई गई। पीकर कलेशजी को थोड़ा करार आया। बोले—"बन्धु किसी इण्टरव्यूकार को बुलाओ। मैं भावी पीढ़ी के नाम अपना संदेश देना चाहता हूँ।' एक पगड़धारी चिर-परिचित ने अपने बगल में दबी बही को कसकर पकड़ते हुए अपने पड़ोसी से पूछा—' म्हे सुण्यो हो के या ब्यूक कार तो घणी मेहगी होवे कलेशजी की ई वगत या फुरमाइश क्यांन कर दी। भला मनख, रजाई देख र तो पांव पसारणो चावे के नी "
एक साहित्यिक बन्धु ने कुहनी मार कर पगड़धारी चिरपरिचित को शान्त रहने

का सकेत किया।

टेलीफोन किया गया। एक पतले दुबले स फोराइज्ड विनापननुमा युवक ने कमरे मे प्रवेश किया। आखो पर चश्मा तीन चौथाई गाला को भी ढके हुए था। यह इण्टरव्यूकार था। इसे देखकर उपस्थितो का मस्तक श्रद्धा भाव स झुक गया। आखिर कलेशजी ने याद किया है कोई गर मामूली आदमी होगा। लेकिन एक मसखरा टाइप ब धु के मन मे कविता उमडने लगी—सारी बिच नारी है कि नारी बिच सारी है की तज पर— गाल बिच चश्मा है कि चश्मे बिच गाल है गाल ही का चश्मा है कि चश्म ही का गाल है आदि आदि। वे गुनगुनाने का मूड बना ही रहे थे कि एक मित्र ने टोक दिया। स्थिति की गम्भीरता देख कर ब धु शा त रहे। इण्टरव्यूकार महाशय इतमीनान स मोढे पर बठ गये। अपने ब्रीफ केस म से कागज निकाले और सधे हुए अ दाज म प्रश्नो का पिंगपोग शुरू किया।

प्र०—हाँ तो कलशजी आपने लिखना कब शुरू किया ?

उ० मा भारती की आराधना मैं किशोरावस्था स ही कर रहा हू।

प्र० *निश्चित सन बतलाइये न ?*

उ० मैं लेखन को काल के ब धनो म नही बाधना चाहता। लखन कालातीत होता है। लेखक स्वय काल का नियामक होता है। मुझे खेद है कि यह सामा य तथ्य भी हमारी युवा पत्रकार पीढी नही जानती।

प्र० खर जाने दीजिए। आपने किन किन विधाओं म लिखा है ?

उ० पूछिये महाशय कि मैंने किस विधा मे नही लिखा है। जगदम्बिका वाणी की अचना मैंने नाना रग विभि नाकृति अनेक गद्य प्रसूनो से की है। सम्पादक के नाम पत्र लेकर महाका य तक हर कोटि का लेखन मैंने हर विधा म किया है।

प्र० आपका सर्वाधिक प्रकाशन किस विधा म हुआ है ?

उ० यही तो रोना है मितवा मेरे सम्पादको के नाम कतिपय पत्रों को छोड कर शेष रचनाए अभिवादन के भार स लद कर लौट आइ। दरअसल हमारे देश मे साहित्य छपता है साहित्य की परख कहाँ है हमारे लोगो को। जी तो करता है रचनाओं के अनुवाद करवा कर विदेशी पत्रिकाओ को भेजा करू पर लोग इसे भी प्रतिभा पलायन का मामला समझेंगे। फिर स्वदेश की सेवा का अपना अलग महत्व जो है।

प्र० आप अपन आपको किस लेखक स प्रभावित मानते हैं ?

उ० देखो मित्र मैं आप स स्पष्ट कह दू कि ऐसे अपमानजनक प्रश्न सुनने की आदत मुझ नही है। प्रभावित होता है इस देश का युवक अभिनेता स प्रभावित होता है इस देश का वयस्क नेता से। लखक किसी स प्रभावित

नहीं होता। वह स्वयम्भू है। वह चैतन्य का विराट रूप है।

प्र० आपका प्रिय ग्रंथ ?

उ० इस देश में ग्रंथ छपने बन्द हो गये हैं। घास के गट्ठरों को मैं ग्रंथ नहीं मान सकता। प्राचीन ग्रन्थों में मेरा प्रिय ग्रंथ 'हनुमान चालीसा' है।

प्र० आपकी इस पसन्द का कारण ?

उ० कारण बिलकुल स्पष्ट है। मैंने इस ग्रंथ के एक एक अक्षर पर महीनों मनन किया है। मेरी तो हार्दिक इच्छा थी कि अपना पी एच० डी० थीसिस भी इस पर लिखना। (गद्‌गद स्वर में) क्या दर्शन है साहब "कुमति निवार सुमति के संगी" कुमति रूपी निवार सुमति रूपी पलँग पर आच्छादित रहती है खैर जाने दीजिए। बड़ा गूढ़ विषय है। आप नहीं समझेंगे।

प्र० अच्छा कलेशजी, एक निहायत व्यक्तिगत प्रश्न पूछ रहा हूँ। यदि आप साहित्यकर्मी न बनते तो क्या बनते ?

उ० जी। सवाल वाकई टेढ़ा है मगर व्यक्तिगत नहीं है। यह एक सामाजिक सवाल है। बल्कि मैं कहूँगा राष्ट्रीय सवाल है। लेखक का अपना कुछ नहीं होता। सब समाज का है। राष्ट्र का है। मैं प्रारम्भ में ही स्पष्टवादी रहा हूँ अतः इस आखिरी वक्त में अपना गलत बिम्ब पाठकों तक नहीं पहुँचाना चाहता। सच्चाई तो यह है कि इस प्रश्न पर मैंने कभी गौर नहीं किया। काश आप मुझसे एक दशक पहले मिल जाते तो मुझे आत्मबोध प्राप्त हो गया होता और मैं सब्जी विक्रेता बनना पसन्द करता।

प्र० (चौंकते हुए) ऐसा क्यों ?

उ० जब लोग बमतलब 'गोश्त फरोश' और 'दर्द फरोश' बन सकते हैं तो क्या मुझे इस आजाद मुल्क में सब्जी फरोश बनने का हक भी हासिल नहीं ?

प्र० क्यों नहीं। मगर आपकी इस पसन्द का कोई विशेष कारण ?

उ० कारण क्या है। एक सपाट समीकरण है। इस देश में किसी भी अच्छी सब्जी का भाव दो रुपया किलो से कम नहीं है जबकि लेखन का भाव 35 से 50 पैसे किलो तक ही है। लेखन में मौलिकता को कोई नहीं पूछता। यदि मैं इसका उपयोग अपनी दुकान में करता तो ग्राहक खुद-ब खुद आकर्षित होते। जैसे मैं अपनी दुकान का नाम 'प्यार गुलक सब्जी भण्डार' रखता। विभिन्न टोकरियों पर लेबल लगाता—अकरेला, प्रतिबद्ध कद्दू, नई भिण्डी, नवालू महानगरीय भिण्डे, सलामी नीबू, कुठाई लौकी, आज के कमल गट्टे, आम आदमी की गोभी, समान्तर तरोई, प्रगतिशील मिर्च आदि। पुराने ग्राहकों के लिए छायावादी लहसन, रहस्यवादी प्याज,

हालावादी टमाटर प्रयोगवादी इमली, उलटबांसी धनिया, अष्टछाप अरबी और सूफी रतालू भी रखता।

एक साथ इतना लम्बा वक्तव्य देने से कलेशजी की सांस चढ़ने लगी थी अत बन्धुओं ने उन्हें डाक्टर की हिदायत याद दिलाई कि वे अधिक न बोलें। कलेशजी इस स्वर्ण अवसर को कब खोने वाले थ। बोले—"हाँ सो तो ठीक है ब धु पर मैं अपने आदरणीय अतिथि को निराश कसे करू। यदि मैं चुप रहा तो य छाप देंगे—अमुक प्रश्न पर कलेशजी ने मौन साध लिया और इस तरह अकारण ही मैं एक रहस्य का पात्र बन जाऊगा। तुम तो जानते हो मेरे *जीवन म गोपनीय कुछ भी नहीं। खुली किताब है। जो चाहे पढ ले।* एक छुट भैया ने बात सँभाली—'कलेशजी बिलकुल ठीक कहते हैं। सत्पुरुषों का जीवन खुली किताब यानी कोरा कागज होता है। वो क्या तो गाना है न मेरा जीवन कोरा ।'

इण्टरव्यूकार को काफी समय हो गया था अत उसने अपना ब्रीफ केस समेटना शुरू किया। तभी कलेशजी पर जसे बेहोशी सी छाने लगी। अद्ध निमीलित नेत्रों से वे बुदबुदाय का फी। काफी फिर बनी। करार फिर *आया। काफी और करार के इस दौर म उन्होंने टाँड पर रखे एक हरे बक्से* की ओर सकेत करते हुए इण्टरव्यूकार को बताया कि उनकी अप्रकाशित एवम सद्य कृतियों की अमूल्य सम्पदा इसी मे सुरक्षित है। इसकी चाबी खाट के पताने वाले बायी ओर के पाये म सतह से सवा दो इच गहरे गडढे मे रखी है। ऊपर वापस लकडी का कवर तथा वार्निश है ताकि किसी को शक न हो। वक्त जरूरत मेरी पत्नी के सौजन्य से आप इसे प्राप्त करें तथा यत्र तत्र सवत्र प्रकाशनार्थ भेज दें। हा, सबस पहले मेरी इच्छा 'अधमयुग मे प्रकाशित होने की *है—इस टिप्पणी के साथ एक सघर्षशील साहित्यकर्मी की कहीं भी प्रकाशित* होने वाली पहली कृति। रचना छोटी है। रग व्यग्य म चल जाएगी।

इतना कहने क साथ ही कलेशजी का सर एक ओर लुढक गया। कमरा मेन न फटाफट तीन चार क्लिक दबाये। इण्टरव्यूकार न पकेट की आखिरी सिगरेट का अग्नि सस्कार करत हुए ब्रीफ केस सभाला और बाहर हो गया। शन शन अन्य उपस्थित भी खिसकन लगे। उन्हें सन्ताप था कि आजीवन उपेक्षित एक महान विभूति के साथ कल उनके चित्र भी अखबारों के मुख पृष्ठों *को सुशोभित करेंगे। चलो किसी तरह समय की कीमत तो वसूल हो गई।*

छोटे चमचे का आत्मकथ्य

लोग मुझे चमचा कहते हैं।

इस देश में पदोन्नति करने मे लोग माहिर हैं। नायब तहसीलदार तहसीलदार, कम्पाउण्डर, डाक्टर, सिपाही, थानेदार की तुरन्त सत्ता पा लेता है। मैं दरअसल चमचे का चमचा हूँ यानि 'बिग चमचे' (कलुछे) का छोटा चमचा, पर मेरी भी पदोन्नति हुई है और अब मात्र 'चमचा' रह गया हूँ।

मुझे इसमे उसी प्रकार आपत्ति नही है जिस प्रकार प्रसादजी को कामायनी के सांकेतिक अर्थ देने म आपत्ति नही थी। चमचा कहने म तो मेरी प्रतिष्ठा बढी ही है। वस्तुस्थिति तो मैं जानता हूँ। जन सामान्य ने भला वस्तुस्थिति पर कब गौर किया है? मैं जिस बिग चमचा (कलुछा) का चमचा हूँ, उसकी ख्याति देखकर मैं दग रह जाता हूँ। जब स्वय मैंने इतनी ख्याति अर्जित कर ली है तो उसकी ख्याति (?) का आप स्वय अनुमान लगा सकते हैं। सवेरे से रात तक पचासो लोग उसके यहाँ आते हैं कोई जमीन अलाट कराने के सम्बध म वगरह वगरह। लोगों को विश्वास रहता है कि बास को कहकर वह काम करवा देगा। चमचों का दबदबा सब मानते हैं सब मानते हैं कि वे उनका काम करवा देंगे, चाहे ऐसा हो या नहा।

उस दिन एक सज्जन आय। सबा स भरे थले को देख तबियत बाग-बाग हो गई। चमचागीरी धन्य हो उठी। भलीभाँति जानता था कि य सब अपन लिए ही हैं। चमचों की नजरो मे क्या सभी इन्द्रियाँ तज होती हैं। कुछ लोग कहते हैं कि इनका दिमाग नहीं होता। अरे भाई, दिमाग है तभी तो दूर के फायदे की बात सोचते हैं। आप तो ऐसा नही कर सकते। हाँ, तो उस सज्जन ने सब बाहर पटकते हुए कहा—

'गगानगर से लाया हूँ—बच्चो के लिए।'

'आपने व्यर्थ में कष्ट किया। मैंने औपचारिकता का निर्वाह किया।

'आप तो अपने आदमी हैं' वह सीधा ही बिजनेस पर आया। अपने मित्र (कलुछा) से कहकर मेरी मुनी का ट्रांसफर देशनोक से बीकानेर करवा दो न। उनकी तो ऊपर तक जान-पहचान है"

'ठीक है मैंने गम्भीरता पूरी तरह से ओढ़ ली मैं आज बात करके देखूगा।' उन्होने झुककर नमस्कार किया और चले गये।

अब मैं इन महाशय का काम नही करवाऊँगा। यह मेरा भारी अपमान है। जनाब कह गये हैं मित्र से कह कर—अरे भाई, छोटे चमचे की अपनी भी स्टडिंग होती है—उनका भी स्वतत्र व्यक्तित्व होता है। बास के यहा हाजरी भरने का काम मैं भी कम नही करता, बल्कि इस क्षेत्र म मैंने चमचा इतिहास क सभी रिकाड तोड दिय हैं। इसके अतिरिक्त मैंने भक्तिरस के क्षेत्र मे भी तुलसी-सूर स कहीं बढकर काम किया है। जब जब विग चमचा (कलुछा) सामने पड जाता है तो स्वय ही जस साकार हो उठता है बाछें खिल उठती हैं। रोम रोम पुलकित हो उठता है नेत्र मुद जात हैं और हाथ स्वत जुड जाते हैं और यदि बास सामने आ जाये तो दिल बासों (बास के कारण) उछलने लगता है वाणी उनकी स्तुनि के लिए मचल उठती है, हाथ और सिर ही नही रोम रोम उनके चरणा म लोटने लगते हैं। दो अमृतमय श द सुनन के लिए कान खडे हो जाते हैं कण्ठ गदगद हो उठता है आखें वाष्पित हो उठती हैं जीवन ध य हो जाता है। भगवान और भक्त के मिलन का सा अपूव दश्य उपस्थित होता है। बास और चमचे के साक्षात्कार का पूरा वणन हो ही नही सकता। 'गिरा अनयन नयन बिनु वाणी।

चमचे सभी विभागों म पाये जाते हैं। जीवन का कोई भी क्षेत्र चमचो से अछूता नही है कि तु शक्तिशाली नेता का चमचा ही असली चमचा होता है। वह स्टेनलस स्टील का होता है शेष चमचा म तो जग लग जाता है। चमचा चाहे किसी विभाग म हो स्टील का है तो बेताज का बादशाह होता है। उसके अधिकारी भी उसस कापत हैं सहयोगी तो स्वय उसके चमचे बनने का मौका तलाशते रहत हैं। चमचो को अपने विभाग म काय करने का समय ही नही मिलता। उदाहरण के लिए कालेज का प्राध्यापक अगर चमचा है तो उसका अध्ययन अध्यापन स कोई सम्ब ध नहीं रहता। उसस सम्ब ध होता है तो चमचा ही क्या बनता ? पर क्या मजाल कि उसका अध्यक्ष या प्रधानाचाय उसको रोक दे बल्कि वे भी उसकी नजरे इनायत को तरसते रहते हैं। जिस तरफ वह देखता है उस तरफ चमचे बनकर लोग उसके आगे झुकने लगते हैं। एक हकीकत बयां कर दू—चमचो की इज्जत ऊपरी मन से ही की जाती है। वसे जहां भी वे जाते हैं लोग उठकर उनका आदर सत्कार करते हैं जय जयकार करते हैं। लोगो को डर रहता है कि इन महान लोगों के मुह से ये श द न निकल पड़े— *मैं तुम्हारा ट्रासफर करवा दूगा। ट्रासफर से सभी डरते हैं।*

चोरो की तरह चमचो के भी चद नियम होते हैं। चोर भी समय स्थान देखकर चोरी करते हैं तो चमचे भी देशकाल वातावरण देखकर चमचागीरी

पुष्ट करते हैं—जिस व्यक्ति का सितारा बुलन्द होता है केवल उसी की शरण में जाते हैं। बॉस का सितारा गर्दिश में देखकर चमचे अपना बॉस बदल लेते हैं। मैं स्वयं अपने 'बिग चमचे' (कनुष्ठे) बदल चुका हूं। यद्यपि मैं अभी तक डाइरेक्ट चमचा नहीं बन पाया हूँ तथापि मुझे अपना भविष्य उज्ज्वल नजर आ रहा है। शीघ्र ही मैं बिग चमचा बन जाऊँगा—ऐसा मेरा विश्वास है।

चमचे की पत्नी अपने गली मोहल्ले की रानी होती है। वह भी अपनी चमचियों से हर समय घिरी रहती है। मौका देखकर चमचियाँ अपने पति का गुणगान कहकर कोई न कोई सिफारिश करती रहती हैं। चमचों की पत्नियाँ और बच्चे उपहार लेते-लेते कई बार परेशान हो जाते हैं। ऐसा सुना है कि खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है उसी तरह चमचे का बच्चा अपने बाप को देखकर अपने चमचे तैयार करने लगता है या स्वयं चमचा बनने के गुण पैदा करने लगता है। ऐसी स्थिति में एक घर में चमचों की कई पीढ़ियाँ तैयार हो जाती हैं। उदाहरण के लिए बिग चमचे का पुत्र या चमचा छोटे चमचों का पुत्र बन जाता है—

मैं उन लोगों की परवाह नहीं करता (वस्तुतः वे मेरी परवाह भी कहाँ करते हैं) जो कहते फिरते हैं कि अपनी इज्जत ताक पर रखकर यह दुम हिलाता फिरता है। अब इनको कौन समझाये कि चमचे तो कबीर की तरह आपा मिटाकर यानि अपनी इज्जत और स्वाभिमान को ताक पर रखकर चमचागीरी के मैदान में पैर रखते हैं। बॉस की इज्जत उनकी इज्जत होती है, बॉस का नाम उनका नाम होता है। वे ही अध्यापक पूर्णसिंह के अनुसार सच्चे वीर होते हैं। उन्हें यदि किसी चीज से नफरत होती है तो बॉस के चमचों की अभिवृद्धि से। एक चमचा दूसरे चमचे को नफरत की निगाह से देखता है। बॉस के सामने तो वे एक दूसरे से गले मिलते हैं पर बाहर एक दूसरे का गला काटने को तैयार रहते हैं।

चमचों के गुणों पर लिखने के लिए एक अलग ग्रंथ की आवश्यकता है। उनके गुण अनुकरणीय हैं। वक्तता का गुण तो चमचा में कूट कूटकर भरा होता है। बार-बार स्तुति करने से चमचे की जुबान मक्खन की तरह चिकनी हो जाती है। वह प्रत्येक व्यक्ति का परिचय प्रचारात्मक ढंग से देता है। अतिशयोक्ति अलंकार तो उसकी जिह्वा पर हर समय निवास करता है। मेरा स्वयं का अनुभव है कि जब किसी लाभ देने वाले व्यक्ति का परिचय देने लगता हूं तो जिह्वा पर मानो सरस्वती आकर बैठ जाती है और मैं अछूते अलंकारों से कवि केशव को भी पछाड़ने लगता हूँ। इस परिवर्तनशील संसार में हमें सदा भय लगता रहता है कि कौन कब बिग चमचा या बॉस बन जाय अतः जीभ को सदा मक्खन से तर रखना पड़ता है।

चमचो की सहनशीलता प्रशसनीय होती है। वे प्रत्येक अवसर पर मुस्कराते नजर आते हैं। वे जानते हैं कि जो उन्हें हिकारत की नजरों से देखते हैं वे ही जरूरत पडने पर उनके आगे हाथ जोडते हैं। लोग उनके बारे मे कुछ भी कहें वे गीता के स्थितप्रज्ञ की तरह निर्विकार बने रहते हैं। चमचो की यह विशेषता भी देखने मे आती है कि और कोई प्रशसा करे या न करे वे स्वय अपनी प्रशसा दिन रात करते रहते हैं।

चमचा पद मोह-लोभ काम क्रोधादि विचारों से बहुत दूर होता है। चमचा पद स्वय म गरिमा मण्डित होता है अत दूसरे पद की आकाक्षा ही उसे नही होती। हाथी के पाँव म सब का पाँव। उसे मोह का भी परित्याग करना पडता है क्योंकि बास और कलुछ ही काफी मोहाध होते हैं उसकी तो बारी ही नही आती। लाभ का तो प्रश्न ही क्या ? जब जीवन की सार्थकता और सफलता चमचा बने रहने म है तो अन्य चीजो का लोभ ही क्यों किया जाय ? काम। राम राम !! बास वगरह ही इस राह का छोडते नही—उस कौन अवसर देगा ? हाँ बॉस यदि महिला हो तो कभी कभी चमचियो से खर। सभी बातें कह देना चमचा नियम क विरुद्ध है। क्रोध यदि हम लोगो को आये तो इस क्षेत्र म एक दिन भी टिकना मुश्किल हो जाय। हम सबसे अधिक शिक्षा ही इस बात की दी जाती है कि क्रोध को जीतो। कोई कुछ कहता रह तुम सदा मुस्कराते रहो। झिडकिया और गालियाँ तो चमचो का उत्साहवद्धन करती हैं और वह दुगने उत्साह से इस क्षेत्र म काय कर पाता है।

अन्त म इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि चमचे की आत्मा उस जीप की तरह होती है जिसकी ब्रेक फेल हो गई हो। चमचा बिना सोचे समझे आगे बढता रहता है। आत्मा रूपी ब्रक के बिना वह कई बार बास को भी हिट कर जाता है और स्वय बास बन जाता है। वैसे ये सभी किसी न किसी के चमचे ही होते हैं और इनका जीवन-सूत्र केवल इतना ही है जो बाबा तुलसीदास के जीवन-सूत्र स मिलता जुलता है—

हानि लाभ जीवन मरण यश अपयश बास हाथ।

कई कुत्ते जो कुत्तो की मौत नही मरते !

मैं अखबार उठाता हूँ। मैं रोटी खाने और अखबार पढने मे बडी जल्दी करता हूँ। सटासट रोटी खा लेता हूँ।

कई बार ता मेरी पत्नी बडे ही मीठे शब्दो मे बडी कडवी बात कह देती है। कोई किसी को कह दे कि तुम पिछले जन्म मे कुत्ते थे तो उसका जवाब हाथा पाई के सिवाय कुछ नही हो सकता बशर्ते कि सुनने वाले मे जरा भी स्वाभिमान हो। पर मैं यह बात कई बार सुन चुका हूँ। शुरू मे तो मैं चमका और गुर्रा कर बोला कि जैसा खाना जिस तरह खिलाया जाता है, उसको मैं खा लेता हूँ, यही मेरा कुत्तापन है न! खैर यह तो पुरानी बात हो गई। अब तो मैं इस तरह के रिमार्क और खाने सटासट निगल जाता हूँ। खाना निगलता रहता हूँ और साथ साथ बात भी। चबाने से उसका कडवापन जीभ को बरदाश्त नहीं। अचेतन मे इसके पीछे कारण शायद यही रहा हो कि जीभ अस्वादिष्ट खाने को हलक की तरफ धकेल देती हो। भोजन-नली मे से होता हुआ खाना गडगड करता पेट मे। खैर, मेरा पेट मेरी जीभ से कहा ज्यादा अच्छा है। मैं अपनी आदत का शिकार। अखबार की खबरें भी इसी प्रकार निगलता हूँ। न कभी चबाता ही हूँ और न रस ही लेता हूँ। हो सकता है कि खाना और खबरो मे कोई स्वाद ले सके ऐसी मेरी रसना न हो। मैं आदी, मेरा पेट आदी।

सब कुछ निगल जाने के बाद मैंने कई बार अकेले मे सोचा है कि कुत्ता इतना जल्दी क्यों खाता है? क्या वह धीरे धीरे चबाकर नहीं खा सकता? अगर ऐसा वह कर सकता तो उसकी आँतो को दिक्कत नही होती, कुत्ते का स्वास्थ्य ठीक रहता, दीर्घायु होता। परन्तु कुत्ता नासमझी से बेमौत और असमय मे मर जाता है। इसी वजह से कोई आदमी जब ढग से नहीं मरता तो लोग कहते है कि कुत्ते की मौत मर गया। लोग जीने में कला ढूढते हैं। लाइफ स्टाइल —की बात करते हैं। परन्तु कुत्ता की तो एक ही मरण शैली होती है—'डेथ स्टाइल' जिसको वे बडी खूबी से जानते हैं। हर माइन्यूट डिटेल का शायद वे इतना बखूबी पालन करते हैं कि उनका एक ट्रेडमार्क हो गया, एक पेटेन्ट बन गया। यह पेटेन्ट मशहूर भी इतना कि बहुत सारे आदमी भी आजकल

इस पटन पर मरते हैं। सहानुभूति म तो शा-द कहने का भी एक ढर्रा प्रचलित हो गया 'आदमी तो बहुत अच्छा था, नेक था, परन्तु हालात न इस प्रकार मजबूरियां थोपी कि बेचारा कुत्ते की मौत मरा। इस तरह की समवेदनाओ तथा शोक स देशो क बीच बहुत स लोग कुत्ते की मौत मरते हैं। मरने वालो की सख्या भी खूब बढ़ गई है जसे कि मरना का भी कोई नया फशन चल पड़ा हो। अलबत्ता यह बात जरूर है कि छोटे कागज खाने वाले लोग इस प्रकार की मौत मरते कम देखे गये हैं।

रात्रि म ज्योही कुछ कुत्ते जोर स हू हू करने लगते हैं तो मेरी पत्नी को बड़ी चिन्ता होती है। अगर मैं सोया हुआ भी होऊँ तो भी वह मुझे जगाकर कहेगी देखो तो सही कुत्ते रो रहे है कोई बडा आदमी मरने वाला है। मैंने उसे कई बार समझाया है कि जब कोई बडा आदमी मरता है तो कुत्ते नही रोया करते उसके पीछे रोने के लिए बहुत सारे लोग होते हैं। सारा देश रोता है झण्डे झुक जाते हैं रेडियो पर चलते प्रोग्राम रुक जाते हैं मातम की धुनें बजने लगती हैं। इसलिए जब कुत्ते रोते हैं तो समझ लो कि बड़ा आदमी तो नहीं ही मरेगा। तुम्हारी आशका बेबुनियाद है।

कोई बहुत बडा आदमी न सही, छोटा मोटा नगर स्तर का आदमी हो सकता है आखिर इतने सारे कुत्ते बेमतलब थोडे ही रोते हैं। रात को ऐसे बेवक्त पर। जरा सोचो, कोई न कोई कारण तो होगा ही'—मेरी पत्नी भी जिद पकड लेती है।

मेरी पत्नी म एक भारतीय नारी के सभी गुण हैं। उनकी फेहरिश्त बनाना तो मुमकिन नहीं। उसम तो गुण ही गुण हैं सिवाय दो छोटे से नगण्य अवगुणो के—हिये म उपजे नही कहना किसी का मान नहीं। परन्तु यह दुर्गुण तो दुगुण रहे नही जसे कि बीड़ी पीना पान खाना। मुझे उसके ये तथाकथित दुगुण खलते भी नही परन्तु आज उसकी जिद एसी लगी कि जसे मेरी कलाई मरोडी जा रही है। मुझे झुझलाहट आई। मैं बोला—

तुम तो इस तरह पूछ रही हो जसे कि कुत्तो न मुझस सलाह करने के बाद ही रोना चिल्लाना शुरू किया हो। आदमी क मरने स तो उसके घर वाले रोते हैं उसके रिश्तेदार रोते है। कई आदमी कर्जदार मर जाते हैं तो उनके पीछे वे रोते है जिनके रुपये डूबे। किसी सेठ का दिवाला निकल जाए और वह मर जाए तो उसके पीछे वे सब लोग रोते हैं जिनके रुपये डूब गए। परन्तु कुत्ते आदमी क लिए किस रिश्ते के नाते रोयें मेरी समझ म आने वाली बात नहीं है। उनकी अपनी ही बात होगी। मैंने अपनी असमर्थता व्यक्त कर दी।

'पर देखो ये कुत्ते अब भी रो रहे हैं। मुझ तो डर लग रहा है यह कुत्तो का रोना बहुत ही अमगलसूचक है। जनता म सुख शाति नही रहेगी, उसने

अपनी रट का नई शब्दावली दे दी ।

'क्या होता है रोने से ! सारी जनता रो रही है, सर धुन रही है कि चीजें मिलती नही कीमतें बढ रही हैं। इतने सारे जुलूस इतना सारा शोर शराबा, मगर क्या असर हुआ कही ? कोई चीज सस्ती हुई कही ? कोई हुआ वज्रापात कही ? सारा देश रो रहा है और जनता चिल्ला रही है—त्राहि माम त्राहि माम । परन्तु कहीं जू भी रेंगी ? मगर चन्द कुत्ते रोते हैं तो कयामत आ जाएगी ? प्रलय मच जाएगी यह है तुम्हारा सोचना ? कुत्ते रोते हैं तो रोयें मैं तो उनके पास जाने से रहा और न अनुनय विनय करूँगा कि तुम रोना बद कर दो। अगर कुत्ता म जरा भी समझ होगी तो उनकी समझ म यह बात आ जानी चाहिए कि इस देश म रोने से या भौंकने से कोई चौंकने वाला नही है ।' मैंने अपनी तरफ से डॉट पिला दी ।

शायद मेरी पत्नी को मेरा डाटना भी भौंकना लगा । वह चुप । थोडी देर बाद कुत्ते भी रो रो कर थक गए ।

इन कुत्तो की वजह से मेरी नीद हराम हो गई। मैंने लिहाफ खीच लिया और मैं ऐसा अनुभव करने लगा कि मैं एक कैप्सूल म बन्द हो गया हूँ । कुत्तो तथा अपनी पत्नी से मेरा सम्पर्कसूत्र कट गया । मैं सोचने लगता हूँ ।

कुत्ते क्या रोते हे ? आदमी क्यो और कब रोता है यह तो समझ म आता है परन्तु ये क्या रोते है ? मैं ज्योही इस विषय पर सोचने लगता हूँ तो समाधान तो नहा मिलता और पुराना सवाल पुराने कर्जे की तरह रिन्यू हो जाता है ।

कुत्ता जल्दी क्यो खाता है ? डरता आदमी जल्दबाजी करता है हो सकता है कि कुत्ता भी डरता हो ! डरता हुआ जल्दबाजी करता है यह तो तथ्य है पर कुत्ता किससे डरता होगा ? मैं सोचने लगता हूँ ।

डरता आदमी लडता है, यह तो मेरा अनुभव है ।

आदमी आदमी से डरता है अत आदमी आदमी से लडता है।

कुत्ता कुत्ते से डरता है, अत कुत्ता कुत्ते से लडता है यह तो समझ मे आई हुई बात है । यही नही भेड भेड से लडती है । गाय से गाय लडती है । लिहाफ के अन्दर मैं देखता हू कि भैंस से भैंस लडती है मुर्गे से मुर्गा और तो और शाति का प्रतीक कबूतर कबूतर से लडता है चोंच भिडाता है । मैंने कई बार शाति के मसीहाओ को मेरे कमरे म कुश्ती करते हुए देखा है । चोंचो से चोंचें लडाते हुए पखो की फडफडाहट करते हुए । मैंने बीच बचाव के दौरान देखा है कि लडाई का मुद्दा या तो कुछ दाने होते हैं या कोई कबूतरी । फिर बेचारे कुत्ते ही बदनाम क्यो ? कोई दूसरा कुत्ता न आ जाए इसलिए कुत्ता जल्दी जल्दी खाता है । कुत्ता दरियादिली दिखाए तो किस बूते पर ! कुत्ता भी लडता है पर वे ही दो मुद्दे, रोटी का टुकडा या हड्डी का टुकडा या कोई कुतिया ।

पर कुत्ते रोते क्यो हैं ? सवाल सुलझने से पहले नींद आ जाती है।

सुबह उठता हूँ तो देखता हूँ कि कैकेई तो अभी कोपभवन से बाहर ही नही निकली है।

कुत्तो ने पति पत्नी के बीच दरार डाल दी है मैं इस विडम्बना पर विचार करने लगता हूँ।

मैं सुबह का अखबार लेकर बैठ जाता हूँ। चाय की प्याली पास म। लबरेज। चाय खतम होने के पहले अखबार निगल जाता हू। अखबार निगल जाने के बाद एक पत्रिका के प ने पलटने लगता हूँ। यकायक मेरी भागती हुई आँखो मे अटक जाती हैं कुछ पक्तिया—

कुत्तो का राजसी जीवन जिसके लिए इन्सान रश्क करे!

कोई कुत्ते पालने का काम है। आला नस्ल के कुत्त। उनके बच्चो का पालन पोषण होता है वातानुकूलित कमरो म।

मैं कुछ चित्र देखने लगता हूँ। छोटे छोटे पिल्ल फोम के गद्दा पर। नौकर चाकर सेवा मे। ओढने को रजाइयाँ। खाने पीने को पौष्टिक आहार। डाक्टरो की पूरी देख रेख।

मैं पूरा विवरण पढने लगता हूँ। *पिल्ला की परवरिश जिस राजसी ढग से* की जाती है उसे देखकर तो हर आदमी की इच्छा होने लगती है कि काश! इस मनुष्य योनि के बजाय तो इन कुत्तो जसी कोई योनि मिली होती तो कितना अच्छा रहता!

मनुष्य योनि भी श्वान योनि के सामने झक मारती है।

पत्रिका रख देता हूँ।

ये कुत्ते के बच्चे! इन्होने पिछले जन्म मे महान तपस्या की होगी।

ये कुत्ते बडे मेधावी हैं। कोई बडी आत्माएँ कुत्तो के रूप मे अवतरित हुई हैं। कुत्तो के इतिहास मे भी कई शानदार पष्ठ हैं। सारे कुत्ते मेधावी ही रहे हो ऐसी बात नही। गजब की किस्मत भी पाई बहुतो ने। मेरी स्मति मे कई कुत्ते उभरते है। एलिजावेथ टेलर का नामी कुत्ता जिसकी शादी म इतना खच हुआ कि उसकी शादी के सामने राजकुमारी ऐन की शादी फीकी लगती है। उसकी शादी का वह जश्न मनाया गया कि कुछ कहा नही जा सकता। क्या कमाल की किस्मत पाई है उस कुतिया ने जिससे एलिजावेथ का कुत्ता युग्म होने जा रहा है।

कहते हैं कि एक श्वान प्रदर्शनी म लीजो का कुत्ता प्रदर्शित हुआ तो लाखो मेम उमड पडीं उस कुत्ते को चूमने के लिए। मालिक ने देखा कि ये मेमें तो कुत्त को चुम्बन क बहाने चाट जाएगी। कुत्ते को चुम्बन की फीस लगाई गई। जब एक चुम्बन की फीस दस डालर रखी गई तो हजारो मेमा के हाथ अपने

पशों की रस्सियाँ ढीली करने लग गए। लीजो फिर घबराई। फीस बढ़ाकर सौ डालर की चुम्बन कर दी गई तो भी दस मेम मैदान से नहीं हटी।

यह भी किस्मत है कुत्ते की। कोई प्रिंस चार्मिंग क्या करे! ऐसा कुत्ता कौन-सी मौत मरेगा, क्या कोई ज्योतिषी बतला सकता है?

यह तो एक ही पृष्ठ है। कुत्ते के इतिहास में ऐसे कई स्वर्णिम पृष्ठ हैं। जूनागढ़ के नवाब साहब को इतिहासकार चाहे किसी तरह याद करें, पर तु जब कोई कुत्तों का इतिहास लिखेगा तो उसके ऐतिहासिक क्रिया कलापों को नजर अन्दाज नहीं कर सकता। उसके राज्यकाल में कुत्ते की शादी के शुभअवसर पर राजकीय कार्यालयों में अवकाश रहा। दुल्हा बना हुआ कुत्ता जब बण्ड बाजों के साथ जूनागढ़ की सड़कों से गुजरा होगा तो दर्शकों ने उस कुत्ते के भाग्य की सराहना की होगी। और, कितनी ही देवियों ने उस भाग्यशाली कुतिया की तुलना में अपने आपको हेय समझा होगा। अगर चायस का सवाल होगा तो बहुत मुमकिन है बहुत सारी देवियाँ अपने संचित पुण्यकर्म और कौमार्य का अर्घ्य देकर भी इस प्रकार की कुतिया बनने में अपना अहोभाग्य समझतीं।

अगर ये कुत्ते हैं तो उनका जीना और मरना भी बहुत कुछ ऐसा है जो मनुष्य को नसीब नहीं होता।

कई कुत्तों ने कई लड़ाइयों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और सरकारी तौर पर इनकी सेवाओं का उल्लेख किया गया।

सारी बातों से एक ही निष्कर्ष निकलता है कि सब कुत्ते एक से नहीं होते। कुत्तों में भी वर्ण व्यवस्था होती है। कई कुत्ते कुलीन होते हैं। इसकी जानकारी लोगों को नहीं है। यही एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। कुत्ता धर्म का रूप होता है, यह तो धर्मराज ने भी माना है। कुत्ता और धर्म साथ जाते हैं बाकी सब पीछे छूट जाते हैं।

एक फ्रांसीसी राजकुमारी को तो आदमी नाम से इतनी चिढ़ हो गई थी कि वह तो कुत्ते की जाति पर ही फिदा थी।

कुत्ते और आदमी के गुणावगुणों की तुलना की गई तो सभी लोग एक ही निष्कर्ष पर पहुँचे—

कुत्ता आदमी की हर चीज व ट्रिक सीख सकता है—सिवाय एक चीज के। उस खिलाने वाले हाथ को काटने की ट्रिक नहीं आती। लोगों ने खूब सरपच्ची करके देखा। आदमी का इसमें कोई सानी नहीं।

कुत्तों की जाति जिस दिन लोप हुई, वफादारी नाम की चीज भी लोप हुई। यह एक भविष्यवाणी है।

मैं आन्तरिक खुशी अनुभव करता हूँ। मेरी आज तक की धारणा बदल जाती है। न कुत्ता हेय और न कुत्तों की तरह मरना व जीना। इन सभी चीजों के

बावजूद भी मेरी पत्नी का प्रश्न एक 'आउटस्टैंडिंग प्रलम' की तरह खड़ा है।

कुत्ते क्या रोते है ? क्या चिल्लाते हैं ? सवाल सरल करने के लिए मैं एक सवाल उठाता हूँ—आदमी भी तो रोते हैं ? वे क्या चिल्लाते हैं ? आदमी तो देवता होने का दम भरता है। आदमी का तो रोना शायद यह है कि आदमी और आदमी के बीच भेदभाव क्या ? रंग भेद क्या ? सब आदमी बराबर है तो कुलीनता का फिर आधार क्या ?

शायद यही बातें कुत्तों के दिमाग में हो तो। आखिर आदमी और कुत्ते में कोई मूलभूत फर्क तो है नहीं। सब कुत्ते बराबर हैं—क्या साहब का क्या सड़क छाप।

अलसेशियन टेरियर पामेरियन वगैरह जाति भेद बेमानी है। हो सकता है, सड़क के कुत्तों ने रात में सलाह कर ली हो और उन्होंने अपने विरोध के स्वर का रुख दिया हो। सीधे कार्यवाही की बात चल रही हो। मगर मेरी पत्नी समझती है कि कुत्ते रोते है। रोष के स्वर को लोग रोने धोने के सिवाय और कोई संज्ञा नहीं देते। मेरी समझ में बात आ गई।

मैंने उसे आवाज दी—आओ तुम्हें समझाऊं कुत्ते क्या रोते है।

उसने मेरी तरफ देखा मुझे लगा कि वह गुर्राएगी।

इसी बीच गली में कुत्ते फिर भौंकने लगे। ऐन वक्त पर कुत्तों ने बनी बात बिगाड़ दी। कुत्तों का यही दोष है। समझौता नहीं करने देते।

वैनकाव सत्य

तब

मानव झूठ भी बोलता तो

सत्य प्रतीत होता था।

ऐसे ही धीरे धीरे वक्त सरकता गया और आया कलियुग का प्रथमचरण—अभी आदमी झूठ बोलने में परिपक्व नहीं हुआ था पर झूठ में शूगर कोटेड मिलावट प्रारम्भ कर चुका था जो सत्य प्रतीत हो।

ऐसे ही समय में एक ब्राह्मण श्रेष्ठ ने अपनी गुणवती गृह कार्य में दक्ष कन्या का विवाह एक ब्राह्मण परिवार के ही युवा सुकुमार से निश्चित किया। कुछ समय पश्चात विश्वस्त सूत्रों से ज्ञात हुआ कि लड़का भ्रष्ट है उसका खान पान मय गुजरे लोगों सा है। यदि यह विवाह सम्पन्न हो गया तो कन्या तथा उसके साथ ब्राह्मण देवता के परिवार को भी निश्चित रौरव नरक भोगना पड़ेगा।

शंकालु मन लिए ब्राह्मण श्रेष्ठ अपने समधी के द्वार पर जा पहुँचे और अपनी शंका स्पष्ट शब्दों में प्रकट करते हुए बोले—

—सुना है लड़का प्याज खाता है।

—सुकुमार के पिता स्थिति की गम्भीरता को तुरंत समझ गये। अपने वंश तथा कुल का ध्यान रखते हुए बोले—(यह स्मरण रखते हुए कि असत्य भाषण न हो जाय) हरे हरे। (खाते तो है पर हरे हरे)।

समधी के धर्म परायण उत्तर से उत्साहित हो ब्राह्मण श्रेष्ठ आगे बोले—

—मांस भी खाता है?—

सत्य को स्वीकार करते हुए उत्तर आया

—श्री श्री। (सिरी सिरी खाते हैं)

—शराब भी पीता है?

इस अन्तिम प्रश्न का निश्चित उत्तर था

—र (1) म र (1) म—(अर्थात—रम से ही गुजारा करता है)

निश्चित हो ब्राह्मण श्रेष्ठ लौट गये पता नहीं—ब्राह्मण श्रेष्ठ के सुकुमार

का विवाह हुआ या नहीं।

—और अब आया कलियुग का वह चरण—
जब मानव सत्य भी बोलता है
तो झूठ प्रतीत होता है।

मेहमाननवाजी का लुत्फ लेने के इरादे में मित्र के यहाँ पहुंचा ही था कि वहाँ अधेड़ उम्र के सज्जन को बैठे हुए देखा—मित्र ने तपाक से मुझे गले लगाया और सज्जन की तरफ संकेत करते हुए बोला—

—इनसे मिलिये। माधव प्रसाद शर्मा।

मैंने औपचारिकतावश उनसे हाथ मिलाया।

पिछली बार हमारे यहाँ प्रिंसीपल का इण्टरव्यू देने आये थे शर्माजी। पास ही के कसबे के डिग्री कालेज में कार्यरत हैं। कल हमारे यहाँ पी० जी० कालेज में प्रिंसीपल का इण्टरव्यू है—इसलिए तशरीफ लाये हैं। मित्र के सम्पूर्ण परिचय कराने के पश्चात मैंने चुटकी लेते हुए पूछा—हर साल नया प्रिंसीपल रखते हैं क्या ?—

इस बीच शर्माजी पत्रिका के पन्ने पलटने लगे थे मित्र बात को आगे घसीटते हुए बोला

—हालात तो ऐसे हैं कि हर माह बदली होनी चाहिए।

इस वजनदार वाक्य से शर्माजी चौंके और बोले—

—वैसे मैं उनसे मिल आया हूँ।

—सेक्रेटरी साहब से ?

—हाँ।

—क्या कहा उन्होंने ?—सकुचाइये नहीं—शर्माजी—यह मेरा पक्का लंगोटिया यार—एक जान दो शरीर हैं—आप सारी बात खुलकर बतायें।

—शर्माजी ने अब पतरा बदला। चाय आ गई थी। चाय का प्याला हाथ में पकड़े वे चुस्कियाँ लेने लगे—सेक्रेटरी साहब ने वही कहा जो कहना चाहिए था ?

—आखिर कुछ तो कहा ही होगा—मित्र का उतावलापन अब हद से बाहर हो रहा था।

—शर्माजी ने चाय का प्याला मेज पर रख दिया और इत्मिनान से सेक्रेटेरिया अन्दाज में बोले—

—कि भई—हम तो किसी को प्रिंसीपल रखना ही है—जो ज्यादा काबिल होगा उसे हम औरों के ऊपर तरजीह देंगे। महाविद्यालय के हालात तो किसी

से छिपे नहीं हैं—आप अपना देख लीजिये—आना चाहें तो आयें। सारे हालात देखते हुए तथा परिस्थितियों का जायजा लेते हुए आप यदि इन्टरेस्टेड हों तो आप कल सुबह साढ़े दस बजे इण्टरव्यू देने आ जाइयेगा।

फिर शर्माजी थोड़ा रुकते हुए बोले—

अब केवल तुम ही मुझे महाविद्यालय के हालात के बारे में फस्ट हैण्ड जानकारी दे सकते हो क्योंकि सबसे पुराने तुम्हीं हो ।

मित्र अब आराम की मुद्रा में बैठ गया मैं भी वहीं दीवान पर लेट गया था और वार्ता में रुचि ले रहा था।

मित्र सिगरेट का कश खींचते हुए बोला

—वैसे गत वर्ष की तुलना में हालात और भी बदतर हुए हैं (बदतर शब्द उसने कुछ इस अन्दाज में कहा मानो कोई सम्मान सूचक शब्द हो)—एनरोलमेण्ट के हिसाब से साढ़े चार हजार छात्र छात्राएँ हैं किन्तु पांच सौ ही ने कॉलेज की फीस जमा की है। मैनेजमेंट की सबसे बड़ी परेशानी यही है और पिछले प्रिंसीपल साहब ने भी इसी कारण इस्तीफा दिया था।

—फिर छात्रों को प्रवेश कैसे दिया गया ?—मैंने प्रश्न उछाला।

—एक रुपया देकर फार्म रजिस्टर कराये जाते हैं और फिर प्रवेश किया जाता है। अधिकांश छात्रों ने उस एक रुपये को ही वर्ष भर का शुल्क मान लिया। छात्र दबाव आजकल इतना है कि प्रवेश रद्द तो किया ही नहीं जा सकता।—हाँ फीस जमा कराने की तारीखें निरन्तर आगे बढ़ती रही हैं।—और फिर छात्र भी तो नित्य कॉलेज नहीं आते।

—उपस्थिति फिर कैसे पूरी होती है ? शर्माजी ने परेशान मुद्रा में प्रश्न किया।

—जैसे फीस जमा करने की तारीखें आगे बढ़ती जाती हैं—तथा जैसे बिना प्रवेश शुल्क जमा कराये विश्वविद्यालय के परीक्षा फार्म भर दिये जाते हैं।

—फीस वसूलने के लिए छात्रों के परीक्षा प्रवेश पत्र क्यों नहीं रोक लिये गये ?

—आपको तो पता ही है शर्मा जी—विश्वविद्यालय यहीं है ।

बाबू प्रवेश पत्र लेकर ज्यों ही महाविद्यालय की ओर प्रस्थान करने लगे छात्रों ने रास्ते में ही उनका भार हल्का कर दिया और सभी को घर बैठे प्रवेश पत्र प्राप्त हो गया।

—ऐसी स्थिति में प्रिंसीपल को क्या करना चाहिए ?

शर्मा जी हतोत्साहित हो गये—

—अलावा इस्तीफा देने के वह कुछ भी नहीं कर सकता ।

—क्या वास्तव म यह बातें सत्य हैं या यू ही शर्माजी का तुम परेशान कर रहे हो ?

मित्र मेरी बात पर हा हो कर हस दिया हँसी रुकने पर उसन कहा—

—अरे यार—जो सत्य मैंन उजागर किय हैं व तो हिमखण्ड की शिखा मात्र हैं।

—क्या मतलब ?—क्या अज भी कुछ बाकी रहता है ? शर्मा जी सत्य को अस्वीकारते हुए बोल ।

—हा—असली सत्य तो अब प्रकट होन जा रहा है। सुनो—

—परीक्षा के दिन अधिकाश छात्र प्रश्न पत्र और उत्तर पुस्तिकाएँ लेकर घर चले जाते हैं। और अपनी सुविधानुसार उत्तर पुस्तिकाएँ लौटा जाते हैं। बहुत स छात्रो क नामाक की ता एक स अधिक उत्तर पुस्तिकाएँ जमा हो जाती हैं।

—क्या मतलब ? मैं उछला ।

—मित्र ने मुख बठात हुए नम्र श ा म कहना शुरू किया—

—लगता है—हजरत अपन एक स अधिक रास्तो को उत्तर लिख कर उत्तर पुस्तिका जमा करन का कह गये हाग और मजे की बात इस युग म भी दोस्त सभी सिसियर निकन।

।

जा परीक्षा केन्द्र पर कर्तव्यनिष्ठ छात्र बच रहत हैं उनमे स कोई भी अपनी रिजव सीट पर नही बठता। सुविधानुसार गाला बनाकर बठत है। पुस्तकालय या साथ लायी पुस्तका म स कोई एक छात्र उत्तर बोलता रहता है बाकी छात्र लिखत रहत हैं और चार पाच कभी कभी छ घण्टे म पुस्तिकाएँ द जात है ।

—हाँ हाँ याद आया यह समाचार ता बी० बी० सी० स भी एक बार प्रसारित हुआ था। शर्मा जी बोले ।

—क्या कभी फ्लाइग स्क्वड नही आता ?

—आता तो है पर दरवाजे स ही लाठी-पत्थर जग द्वारा लौटा दिया जाता है। यदि दिलेरी दिखान का कोई माइ का लाल प्रयास करता है तो लाइसस शुदा बन्दूक या पिस्तौल गाली उगलन म चूक नही करती ।

—परेशान मुद्रा म शर्माजी न पूछा—

—फिर यहाँ की पुलिस तथा जिला प्रशासन क्या करता है ?

—वह हर मुसाबत म छात्रा के साथ सहयाग करन पर तत्पर रहता है ?

—और पुस्तकालय की क्या स्थिति है ?

—आधी से अधिक पुस्तकें जो टक्स्ट बुक की तरह हैं महाविद्यालय के छात्रों के निजी पुस्तकालय की शोभा बढ़ रही हैं। स्टैंडण्ड पुस्तकें उनके विशेष उपयोग की नहीं है अतः अस्पश्य हैं।

स्टाफ तो सहयोग देता होगा—शर्मा जी बुझे से स्वर में बोले।

—स्टाफ—स्टाफ की कुछ मत पूछिये शर्मा जी! लगभग एक सौ साठ अध्यापक प्राध्यापक तथा साठ के करीब अन्य कर्मचारी हैं। इनमें से प्राय तीस प्रतिशत तो पिछले तीन माह से एक दिन भी महाविद्यालय नहीं आये हैं। उनके लिए यहां कुछ काम ही नहीं है। छात्र भी उनके साथ है, उनकी वेतन राशि चक द्वारा उनके बैंक खाते में जमा हो जाती है।

—बाकी स्टाफ—?

—शेष स्टाफ के पास भी छात्रों की अनुपस्थिति में कोई काम नहीं रहता, बस आकर हाजरी लगाकर लौट जाते हैं। यहां तक कि पुस्तकालय में भी उनके लायक कुछ नहीं होता और आखिर वो पढ़ें भी तो किसके लिए?

मित्र ने फिर ठहाका लगाया—

—विभागाध्यक्ष तो होंगे- वो क्यों नहीं रोकते?

—अरे शर्मा जी आप भी क्या दकियानूसी बात ले आये। यू० जी० सी० ग्रेड के पश्चात सब बराबर अब कौन उनकी सुनता है?—

यहाँ तो यह हाल है—मैं भी रानी तू भी रानी कौन भरेगा पानी?

रात्रि अब काफी गहन हो चली थी। सुबह की प्रतीक्षा में हम दोनों ही भोजन कर सो गये।

मेरी प्रातः आँखें देर से खुली फिर भी नींद का नशा छलता था कि मैं ब्रेक फास्ट लेकर फिर सो गया। मित्र शर्मा जी को लेकर महाविद्यालय चला गया था।

दो बजे मित्र के झकझोरने पर आँखें खुली—देखा शर्मा जी अपना अटैची सँभाल रहे हैं? मैं यह सब देखकर हक्का बक्का रह गया। एक तो नींद का बोझिल नशा तिस पर शर्मा जी का बुझा सा चेहरा।

फिर भी हिम्मत कर शर्मा जी से पूछा?

—कहिये कैसा रहा आपका इण्टरव्यू?

शर्मा जी बुझे से स्वर में बोले—

—सिलेक्शन तो निश्चित लगता है। हालात वही हैं जो कल बयान हुए थे। इसके अतिरिक्त सबसे परेशानी वाली बात जो मैंने महसूस की वह यह कि सारे छात्र नेता हम प्रत्याशियों के सामने ही सचिव महोदय को डाँट गये—कि सिलेक्शन सूझ-बूझ से किया जाय जिससे हम बाद में परेशानी न हो। ऐसे हालात में अन्य प्रत्याशी तो वहीं अपनी असमर्थता प्रकट कर गये।

और आप आप ज्वायन करेंगे या नहीं ?

—मैं अपना मानस नियुक्ति पत्र के बाद बताऊंगा कि यहाँ आऊँ या नहीं।
—शर्माजी दीर्घ निश्वास लेकर मृतप्राय शब्दों में बोले।

भोजनोपरांत शर्मा जी भी चले गये और मैं भी अपने इस सुखद प्रवास के बाद लौट आया। पता नहीं—शर्मा जी ने ज्वायन किया या नहीं।

चमचा-सूत्र

ओम श्री चमचाय नम ।

अथ श्री चमचा सूत्रम् ।।1।।

टीका—हे चमचा साहब आपको नमन है। अब मैं तो श्री चमचा सूत्र का शुभारम्भ करता हू ।

शका—चमचा नाम के आगे 'श्री' क्यों लगाया गया ?

निवारण—चमचा एक खतरनाक ज तु है, अत इस असामा य सम्बोधन दिया गया है ?

अहर्निश सवायाम् ।।2।।

टीका—मेरे योग्य सेवा यह चमचे का वेद वाक्य होता है।

शका—इस प्रकार चमचा हर समय काय को करने के लिए क से प्रवृत्त रहता है ?

निवारण—चमचा हर समय अपनी कमर में 90 अश का कोण बनाकर खडा रहता है। यह मुद्रा चमचे के लिए अत्य त प्रभावशाली वस्तु है। सेवाभावी ही चमचे बन सकते हैं।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव ।

त्वमेव ब धुश्च सखा त्वमेव ।।3।।

टीका—चमचे का आराध्य ही उसके लिए माता पिता, ब धु और मित्र होता है।

शका—चमचे के असली बधु बा धव क्या नही होते ?

निवारण—वत्स तुम बडे भोले हो। चमचा उन्हीं के गुण गाता है जिनस कुछ लाभ लिया जा सकता है। अत चमचे के आराध्य ही उसके लिए सब कुछ होते हैं।

यावत् जीवेत् सुखम् जीवेत ।

ऋणम् कृत्वा घृतम पीवेत ।।4।।

टीका—महर्षि चार्वाक के इस सिद्धा त का चमचे अक्षरश पालन करते हैं। जब तक वे जीते हैं, सुख से जीते हैं। ऋण लेकर भी मक्खन

लगाते हैं यानि आराध्य का गुण रखते हैं।

शंका—क्या शुद्ध भी उपलब्ध होता है ?

निवारण—पुत्र ! शुद्धाशुद्ध की चिन्ता व्यर्थ है। आजकल अफसर और आराध्य दोनों ही शुद्धता के चक्कर में नहीं पड़ते।

सत्यम् ब्रूयात् प्रियम् ब्रूयात्।
ना ब्रूयात् सत्यम् अप्रियम् ॥5॥

टीका—सत्य बोलो प्रिय बोलो अप्रिय सत्य को मत बोलो।

शंका—क्या चमचे सदा सत्य संभाषण ही करते हैं ?

निवारण वत्स—चमचे रखते ऐसी बातें करते हैं जिससे उनके आराध्य प्रसन्न रहें। सत्यासत्य के चक्कर में वे नहीं पड़ते।

प्रतिशंका—ऐसी स्थिति में वे अपने आराध्य को गुमराह करते होंगे ?

प्रतिनिवारण—आराध्य जानते हैं कि चमचे का साथ करना अत्यन्त आवश्यक है अन्यथा कोई चमचा विरोधी गुट का प्रमुख चमचा बनकर उनकी पोल खोल सकता है।

अतः चमचा हमेशा मधुर बोल ही बोलता है।

औषधाथ सुमन्त्रणाम् बुद्धैश्चैव चमचानाम्।
असाध्य नास्ति लोकेऽत्र यत् ब्रह्माण्डस्य मध्यगम् ॥6॥

टीका—औषधि अथ सुमन तथा चमचों की बुद्धि से इस संसार में सब कुछ सम्भव है।

शंका—क्या चमचे की बुद्धि बहुत तीव्र होती है ?

निवारण—सवाल तीव्रता का नहीं चमचत्व का है जो असम्भव को सम्भव कर देता है।

निन्दुतु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु।
लक्ष्मी स्थिरा भवतु गच्छतु वा यथेष्टम् ॥
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा।
चमचात्पथ प्रविचलन्ति पद न चमचा ॥7॥

टीका—चाहे कोई निन्दा करे चाहे स्तुति चाहे पैसा आये या जाये मृत्यु चाहे आज हो या सौ वर्ष बाद चमचे अपने चमचा मार्ग पर ही चलते रहते हैं।

शंका—क्या चमचे लक्ष्मी की अपेक्षा कर सकते हैं।

निवारण—कदापि नहीं वे कोई स्वाभिमानी थोड़े ही हैं जो लक्ष्मी की उपेक्षा कर दें लेकिन वे अपना मार्ग इस तरह बनाते हैं कि सभी सुखों का उपभोग निर्णय होकर कर सकें।

मूढाणाम पण्डिता द्वेष्या निधनाना महाधना ।
व्रतिन पापशीलानाम स्वाभिमानी नाय चमचा ।।8।।

टीका—मूर्ख विद्वाना स, गरीब अमीरो स पापी पुण्यात्माओ मे तथा चमचे हमेशा स्वाभिमानी व्यक्तियो स द्वेष रखते हैं।

शका—इस द्वेष का कारण क्या है ?

निवारण—इसके दो प्रमुख कारण है। आज के युग म चमचे स्वाभिमानी स डरत हैं परन्तु उ हे अपनी राह का रोडा समझत हैं। साथ ही अफसर और आराध्य भी स्वाभिमानी का नीचा दिखान के लिये चमचा की मदद लेत हैं। अत चमचे हमेशा स्वाभिमानी से द्वेष करत हैं।

चमचा हि देशस्य महा रिपु ।।9।।

टीका—चमचे देश के सबस बडे शत्रु हैं।

शका—चमचों को देश का शत्रु क्यो कहा गया है ?

निवारण—क्योकि चमचे अपन क्षुद्र स्वार्थ के लिए देश की परवाह नही करते है। कई बार वे अपने भले क लिए देश को गत मे ले जाते हैं।

सर्प क्रूर चमचा क्रूर सर्पात क्रूरतर चमचा ।
सर्प शाम्यति मन्त्रेण चमचा नव शाम्यति ।।10।।

टीका—सर्प और चमचा दोनो क्रूर होते हैं। चमचा सर्प से भी क्रूर होता है। सर्प को मत्र से वश म किया जा सकता है, लेकिन चमचे को नहीं किया जा सकता है।

शका—चमचे की तुलना साप से क्यो की गयी है ?

निवारण—वास्तव म चमचे आस्तीन के साँप होते हैं। जिन्हें दूध पिला कर बडा किया जाता है। लेकिन कृतघ्न होने के कारण व अपने आराध्य को ही डसते हैं।

यथकेन तु हस्तेन तालिका न सपद्यते ।
तथचमचा परित्यक्त कर्म नाप्तम ।।11।।

टीका—जिस तरह एक हाथ स ताली नहीं बजती है इसी प्रकार चमचे के बिना कर्म फल नही प्राप्त किया जा सकता है।

शका—चमचे के बिना कर्म फल क्यो नही मिल पाता है ?

निवारण—तुम बडे भोले हो वत्स ! सामान्य व्यक्ति आराध्य या अफसर तक नही पहुच सकता है अत अपना कार्य सम्पूर्ण कराने हेतु उस चमचे का सहारा लेना पडता है। चमचे ही कार्य के लिए माध्यम हैं।

यो भजते मानवा ।
त चमचे भवेत ।।12।।

टीका—जो व्यक्ति इसका भजन करते हैं वे चमचे बनत हैं ।

शका—क्या सभी मानव चमचे बनना चाहते हैं ?

निवारण—नेकी और फिर पूछ-पूछ । चमचा बन जाना कोई आसान काम नही है । अत सभी बनना चाहते हैं ।

सुफलम प्राप्नुवन्ति प्रात भजामि ये ।
अभिलाष दात्रम लक्ष्मी भवेद दासी, चमचाय नम ।।13।।

टीका—जो चमचा, इस सूत्र का पारायण सुबह उठकर करेगा उसे सुफल यश लक्ष्मी प्राप्ति होगी तथा उसकी अभिलाषायें पूण होगी ।

शका—जो इस सूत्र का पारायण नही करेंगे उनका क्या होगा ?

निवारण—वे इस नरक म सड सड कर मरेंगे ।

इति श्री चमचा सूत्रम ।।14।।

टीका—अब मैं चमचा सूत्र का समापन करता हूँ ।

एक फिल्म महान कवि पर

आखिर वह बड़े परिश्रम के साथ अपनी कहानी तयार करके निर्माता गोरखधंधी के घर पहुँचा। गोरखधंधी खार मे रहता था, चंदानी सेठ की बिल्डिंग मे, तीसरे माले पर। समय उसने पहले से ही तय कर लिया था, अत गोरखधंधी से मिलने जुलने मे उसे कोई आना कानी नही सुननी पडी। बल्कि उसने मधुर मुस्कान के साथ उसका स्वागत किया 'वैल कम मिस्टर सुधेश। हम आपकी ही प्रतीक्षा कर रहे थे।' सुधेश ने सोचा कि आज गोरखधंधी का मूड काफी अच्छा है। आज वह सदा की तरह रूखा रूखा नही लग रहा है। उसका चेहरा ताजगी म डूबा है।

वह भी मुस्कराया—एक अर्थहीन मुस्कान।

थोडी देर म वह गोरखधंधी के ड्राइग रूम म था, जहाँ पहले से ही निर्देशक बोतलवाला, हीरोइन मस्तानी, संगीत निदेशक चोरन और पोरन बैठे थे। सब ने सुधेश का नजरा स स्वागत किया। औपचारिक परिचय देते हुए गोरखधंधी न सिगरेट सुलगा कर कहा सुधेश जी हिन्दी म फेमस लेखक हैं। इन्होंने कई पुस्तकें लिखी हैं। वे पुस्तकें पाठको द्वारा काफी पसद की गई हैं। हमने इनसे एक हिन्दी के महान कवि की लाइफ पर कहानी लिखवाई है। कवि भी ऐसा जो निराला कहलाता है।

निर्देशक बोतलवाला बीडी सुलगा कर उसका कश लेने लगा पर बीडी तुरन्त बुझ गयी। उसने फिर बीडी जलाई और कहने के लिए उसके हाठ खुले ही थे कि बीडी फिर बुझ गयी। उसे बडा गुस्सा आया, 'कम्बखत जलती ही नहीं। बार-बार बुझ जाती है।'

इस पर नायिका अठारह वर्षीया मस्तानी झट से बोल पडी मिस्टर बोतल वाला बीडी म पहले दिल जलाइए।

चालीस वर्षीय बोतलवाला पारसी स्टेज के हीरो की तरह स्वर लम्बा करके बोला— वह ता जल चुका है, अब तो उसको बुझाने वाला चाहिए।'

गोरखधंधी ने मेज बजाते हुए कहा, प्लीज चुप हो जाइए हलकी फुलकी बातचीत का यह समय नहीं है। गभीरता स सुधेश जी की कहानी सुनिए,

सब चुप हो गए। सन्नाटे की हल्की परत छा गयी। सिफ हल्का हल्का धुआँ कमरे म फल रहा था।

सुधेश ने फाइल खोलकर पढी—यह कहानी सूयकान्त त्रिपाठी 'निराला' की है। सूयकान्त त्रिपाठी का जीवन सघष की एक कहानी है। दुखो व अभावो की एक खुली किताब है। इन्होने हिन्दी कविता को नया स्वर और नयी दिशा दी थी। और लगभग एक घटे तक सुधेश श्री सूयकान्त त्रिपाठी निराला का जीवन वत प्रमाणिक तथ्यो के साथ प्रस्तुत करता रहा। जब उसन सारी कहानी सुनायी तो उपस्थिति मे एक अजीब सी उदासी आ गयी। एक गूगापन छा गया।

गोरखधधी ने सिगरेट का लम्बा कश लेकर उसे बुझाया और कहा यदि यही हिन्दी के महाकवि निराला की कहानी है तो बन गई फिल्म! इसम सिफ नेहरू जी वाला ही प्रसग काम का है वर्ना सब गुड गोबर।

बोतलवाला बीडी का तोडते हुए बोला खोदा पहाड और निकली चुहिया। गोरखधधी जी आप क्या क्या समा बाँधते थे कि वह एक व डरफुल कहानी होगी? परन्तु इसम न तो कोई क्लाइमेक्स है और न पब्लिक को पकडने का मसाला।'

मस्तानी ने तो अपना निणय ही सुना दिया। सेठ गोरखधधी, मैं आपके इस फिल्म म काम नही करूगी। इसमे तो कवि की पत्नी तुरन्त मर जाती है। प्रेम का एक भी सीन नही है।

और दो गाना कहाँ होगा? सगीत निर्देशक चोरन शोरन बोले।

गोरखधधी न झुझलाकर अपना हाथ ऊँचा किया। सबको शात करके कहा सुधेश जी बेचारे खालिश साहित्यिक लेखक हैं। फिल्मी लटके झटके इन्हें नही आते हैं। निराला हिन्दुस्तान का माना हुआ शायर है। यह हिन्दी पाठका मे बहुत ही पापुलर है। हम उसे चटपटा बना लें तो यह चित्र बाक्स आफिस हिट हो सकता है।

काफी वाद विवाद के बाद तय हुआ कि कहानी को फिल्म के हिसाब से बना लिया जाय।

काफी का दौर चला।

सबसे पहले यह प्वाइन्ट नाट किया गया—महाकवि निराला ने जीवन से लकर साहित्य रचना तक मे इन्कलाब किया। उनके बाल लम्बे थे। वे अत्यन्त ही सुन्दर थे। ब्राह्मण होकर मास मछली खाते थे। एकदम इन्कलाबी।

बोतलवाला ने नया सुझाव दिया, 'आपकी बातो स लगा कि कवि निराला

वास्तव मे मतवाला था। ' सुधेश जी, देखिए, किसी भी सच्ची घटना का फिल्मीकरण ऐसे होता है। जस आपका महाकवि निराला एक हिप्पी टाइप का लडका है। वह अपने साथियो, जिनम कुछ लडकियाँ भी हैं, को लेकर नदी के किनारे बैठा है। शराब, गाजा, चरस के दौर चल रहे हैं। क्योकि यह प्रामाणिक है कि निराला के बाल लम्बे थे इसलिए वह हिप्पी था। फिर लडके लडकियाँ नाचत हैं।

शोरन मेज पर थपकी मारकर बोला—'क्या हाईक्लास कोरस साग की सिचुएशन है ! हिट साग। निराला अपनी मस्ती म है। गीत गा रहा है। अपना लिखा गीत गाल गाल गाल माल माल माल अपना नही रे हो हो सपना फिर मिलेंगे—

गोरखधधी न कहा जब गाना खत्म हो जाय तो एक शानदार ओरिजनल आइडिया और होना चाहिए।'

सुधेश न पूछा, 'किस बात का।'

'हीरोइन से पहली मुलाकात का। ऐसी पहली टक्कर हो कि सभी लोग चक्कर मे आ जाएँ ?'

'परन्तु यह तो उनके जीवन मे है ही नही।' सुधेश न विरोध किया।

अरे भाई सुधेश जी फिल्मो में वही होता है जो जीवन म नही होता। फिर हम जिस ढग स महाकवि के चरित्र को प्रस्तुत कर रहे है वह उसको अमर बना देगा। बोतलवाला ने गम्भीर होकर कहा।

सगीत निर्देशक चारन ने कहा, मेरे दिमाग म एक खयाल आया है।'

'क्या ?'

'कव्वाली का एक कम्पोटीशन करा दें।

'कवाली उस एटमास्फियर में नही जच सकती। गारखधधी ने कहा, 'वह हिन्दी का शायर है।'

'आ गया आ गया।' बोतलवाला बडी नाटकीयता से बोला, मेरे दिमाग मे एक आइडिया आ गया है। चूकि प्रेम का आरम्भ नये ढग स होना चाहिए सो हमारा शायर नायक जगल म चला जाता है वह अकेला है जगल मे शेर दहाडता है शायर कांपता है तभी शेर की जगह एक लडकी निकलती है, लडकी देखते ही वह मुग्ध। वह प्रेम का इजहार करती है उसको अपनी बाँहों म भरने लगती है। हमारा त्रिपाठी बिदके हुए घोडे की तरह बिगड जाता है। वह तडातड दो चार चाटें छोकरी को मारता है। छोकरी हँसती है। वह भी हँसता है। फिर उस गले लगाकर कहता है मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। फिर आपने मुझे मारा क्यो ? छोकरी पूछती है। त्रिपाठी जवाब देता है यह मेरे प्रेम करने का तरीका है। छोकरी कहती है एकदम ओरिजनल निराला '

गोरखधधी न मेज पर मुक्का मारा वाह क्या धांसू आइडिया है, व डरफुल निराला उसके प्यार करने का तरीका निराला है इसलिए उसका नाम भी निराला पड जाता है। बस यही स श्रीमान सूयका त त्रिपाठी निराला' हो जाते हैं।'

सुधेश ने फिर विरोध किया सेठ जी, यह तो त्रिपाठी जी का उपनाम था। साहित्य रचना मे उ होने जो क्रातिकारी कदम उठाये उसके लिये ही उ हें लोग निराला कहते है।'

बोतलवाला न कहा सुधेश जी फिल्म म हर बात के पीछे कोई ठास कारण होना चाहिए। आप देखेंगे कि इस आइडिया स सारे दशक उछल पडेंगे और आपके निराला अमर हो जायेंगे। लोग प्रेम करने के इस तरीके को अपनायेंगे। प्रयोग म लायेंगे ?

शोरन और घोरन एक साथ बोले यहां एक दो गाना होना चाहिए। किशोर और लता का। हम एसा फटकता म्यूजिक देंग कि लोग पर्दें फाड देंगे। कुर्सियो पर उछलने लगेंगे।

बोतलवाला ने फिर बीडी सुलगाकर कहा एक नाम कहानी मे और आया था डा० प त जी। वाह सुधेश जी, यह प त जी कौन हैं ? कोई अच्छे मित्र हैं क्या अपने हीरो के।

'जी, प त जी हि दुस्तान के महान कवि हैं। उ हें एक लाख का पुरस्कार भी मिला है।

बोतलवाला ने चुटकी बजायी, 'गुड। आयी न नयी बात। हमारा नायक निराला की हर बात निराली होती है। वह सम्मेलनो मे नही जाता वह अफ सरो की जी हुजूरी नही करता वह मिनिस्टरो के दरवाजे नही खटखटाता। नतीजा यह निकलता है कि रोटियो के लाले पड जाते हैं। प्रेमिका दुखी, वह अभाव म रहना नही चाहती वह उसे बार बार नौकरी करने को कहती है पर निराला तो निराला ही ठहरा। प्रेमिका मस्तानी सुनो मस्तानी तुम्हारा फिल्म म यही नाम रखेंगे। मैं कह रहा था एक दिन निराला को बुखार आ जाता है दवा के पैसे नही हैं करे तो क्या ? बेचारी मस्तानी एक दिन भागकर प त जी के पास जाती है। प त जी उसे देखत ही लुट जाते हैं।' अपनी बात को खत्म करके बोतलवाला ने सुधेश स कहा भाई सुधेश जी, यहां मैं आपके उस प्लाइट को पकड रहा हूँ जिसम आपने प त जी को बचलर बताया है। भाई आजीवन कुवारा आदमी तभी रह सकता है जब उसने कही चोट खायी हो। चोट भी कौन सी प्रेम की असफल प्रेम की मस्तानी को देखते ही प त भाई पन्त जी की जगह मे प्रीतम कर रहा हूँ प्रीतम की सास रुक जाती है। फिर वह पूछता है आप ?' मस्तानी से बोला नही जाता है। वह प्रीतम

को एकटक देखती है। कट क्लोज अप प्रीतम पूछता है आप कौन हैं क्यो आयी हैं कहीं मैं सपन मे सौन्दय की देवी को तो नही देख रहा हूँ। कट
कमरा पन होता है मस्तानी पर। क्लोज अप शाट मस्तानी रो रही है। रोते रोत कहती है। भाई साहब, आपके मित्र की हालत खराब है मैं निराला की प्रेमिका हूँ। प्रीतम के हृदय पर आरा चल जाता है। दिल के हजार टुकड हो जाते हैं। उस लगता है कि वह बड़ा ही बदनसीब है। मस्तानी कहती है, जल्दी चाहिए। प्रीतम उसकी बडी सवा करता है। फिर निराला को रेडियो पर गीत गान के लिए राजी करता है। सड साग

घोरन न गदन हिलाकर कहा, क्या सिच्चवेशन निकाली है। दशक रो पड़ेंगे।

चोरन न अँगुलियाँ थपथपा कर कहा वाह वाह, मान गये बोतलवाला जी, आज मेरी तरफ स बोतल खुलेगी। क्या कहानी को टन मारा है।

गोरखधधी न सिगरेट पीते हुए कहा सिल्वर जुबिली फिल्म। कही कही तो गोल्डन जुबिली करेगी। सिफ कामेडी नहा आयी है। सुधेश जी, कोई आइडिया दीजिए न ?'

सुधेश न गुस्सा पीते हुए कहा क्या आइडिया दू आप तो आरिजनल कहानी का सत्यानाश कर रहे हैं ?'

बोतलवाला बोला, लो वाला। यदि हमारी बातें ही आपकी समझ मे आ जाती तो सुधेश जी अभी आपके पास कार होता। इम्पाला कार, समझे।

लेकिन इस कहानी को लोग देखना पसन्द नही करेंगे। अपन प्रिय महान कवि के प्रति इस तरह की बचकानी बातें सरकार भी सहन नही करेगी।'

क्यों सरकार को क्या तकलीफ हो रही है ?'

निराला एक महान कवि था।'

अरे लास्ट म पडित जी स उस पद्मश्री दिलवा देंगे।' गोरखधधी ने कहा।

'पर यह कहानी उनके जीवन ।

अब मस्तानी बोली, 'जीवन की परवाह नहीं दर्शकों की परवाह कीजिए। सुधेश जी, यह कहानी हिट होगी, आपका रेट पचास हजार हो जाएगा।

'मैं इस कहानी पर अपना नाम नही दूगा।'

बोतलवाला ने कहा— कोई बात नहीं। हम कहानीकार की जगह स्टोरी डिपाटमट लिख देंगे। सभी अड़चनों से बचने के लिए शुरू और आखिर मे लिखा देंगे कि इस कहानी का सम्ब घ किसी भी जीवित या मृत व्यक्ति से नहीं है। यह एक सवथा काल्पनिक कहानी है अब कौन सी समस्या रह जाती है।

गोरखधधी न अपनी जेब म से दस दस रुपयों की दो गड्डियाँ निकालकर

कहा, सुधेश जो आप अपने पसे लीजिए और आराम से रहिए।'

मैं ऐसे पसो पर थूकता हूँ और वह उठ कर बोला, महाकवि मुझे क्षमा करना। पता नही ये नाट तुम्हारी क्या क्या दुगत बनायेंगे।

वह बाहर आ गया।

बोतलवाला बोला, 'मूख कही का, चलें अब हम आगे बढ़ें। कहानी का अन्त तो बाकी ही है।

एक कुत्ते की मौत

कना भवर सात अड्डे ।

सात अड्डे यानी सात आध प्याले चाय । कोटगेट के अदर घुसते ही दाहिनी तरफ एक पतली सी चाय और पान की दुकान है । इस जगह बहसिया लोग अधिक आते हैं और आधा प्याला चाय से पर्याप्त ऊर्जा प्राप्त कर वेइंतहा फेफडो की वर्जिश कर काफी रात बीतने पर अपने अपने घोसलो को लौट जाते हैं । अधिकांश सवाद दुकान के आगे समानांतर पडी लचकीली बेंचो पर बैठ कर होते हैं । मुद्दों की यहा कमी नही ठीक उसी प्रकार जैसे इस शहर मे रचनाकारो की कोई गिनती नही । बहसें शीघ्र ही प्रलाप मे बदल जाती हैं जिनका प्रारम्भ तो होता है लेकिन मध्य और अन्त नही । फिर भी इन्हे 'क्लासिक' की सज्ञा दी जाती है क्योंकि यहाँ पर जमने वाले लेखको का दावा है कि सुकरात के बाद सवाद और कही नही हुए । खैर । उस रात एक गोष्ठी से लौटी भीड के सात सदस्य यहाँ आकर जम गए थे ।

जाहिर था कि वे एक पुस्तक का विमोचन करके लौटे थे और काफी विचार मथन हो जाने के बावजूद भी अभी अघाये नही थे ।

—'यार 'दस चेहरे' मे कवियो मतलब क्या है ?'

—क्यो ? शीर्षक पसन्द नही आया ?'

—'पसन्द तो आया पर समझ मे नही आया ।

—तो भाई, इसे समझाओ । तीन घटे गोष्ठी मे बैठा लेकिन शीर्षक समझ मे नही आया ।'

—नहा । ये बन्धु ठीक कह रहा है । इसका शीर्षक गधे की सूड होना चाहिए था ।'

—गधे की सूड ? वो कहाँ से आयगी ?

—कही से भी आए । जब एक आदमी दस चेहरे लगा सकता है तो गधा एक सूड नही लगा सकता ?'

—'लगा तो सकता है । मगर उस सूड को उठायेगा कैसे ?'

—'कैसे भी उठाये ।

— सडक पर घिसटती चलेगी।'

— यार, गदभ जी आयेंगे खूब।'

— क्या कहने ! और जब राग छेड़ेंगे तब सूड म होते हुए स्वर ऐसे निकलेंगे जस रायफल की नली म से गोली।'

— मारो गधे की सूड को गोली। कहीं इस दस चेहरे' का रावण के दस चेहरो स तो कोई सम्ब ध नहीं है।

—'उस समय ऊँघ रहा या क्या ? बात चली थी न ! हरेक आदमी के कई चेहरे होते हैं। पांच भी हो सकते हैं और दस भी।'

— लेकिन दस स अधिक नही होने चाहिए।

— क्यो ?

— अरे भुस, दस स अधिक का बोझ नही उठ पायेगा। ये सीमा तो रावण ने ही बाँध दी थी।

— इतने चेहरो की आखिर जरूरत क्या है ?

— जरूरत वालो को है जरूरत। एक स खाओ एक से पियो एक स गाली दो एक स प्रवचन एक पर घृणा हो एक पर प्यार एक रगदार हो, एक बदरग या बेरग एक पर अमीरी हो, एक पर गरीबी।

— ठीक है लेकिन यह सब तो एक चेहरे पर भी हो सकता है।

— तू चाय पी। आज तरा भेजा यूनान स स्पार्टा की ओर चला गया है। आज तू ज्ञान की बातें नही समझेगा।

— यार बहस तो पते की कर रहा है। इसे जरा टन दते हैं। ये बताओ आज तक के इतिहास म कोई ऐसा मनुष्य हुआ है जिसके केवल एक ही चेहरा हो। अपन युगपुरुषो के नाम ही लें—राम कृष्ण कण अजुन द्रौपदी सीता, बुद्ध कौटिल्य गाधी, नेहरु और बाहर के भी मसलन ईसा मसीह नेपोलियन हिटलर जकी कनेडी आदि आदि।

—'सब हुस्र मुखी थे।

—'तभी तो जटिल है। आसानी स समझ म नही आते। और समझ म यदि आ आयें तो महापुरुष कसे कहलायें !'

—'नतिक दष्टिकोण से क्या यह उचित है कि मनुष्य बहुमुखी बने यानी उसे कई चेहरे लगाने पड जायें।

— नैतिकता निधनो और कमजोर व्यक्तियो का घिसा पिटा सम्बल है। धम और नतिकता के प्रसग बासी पड गए है। नीत्शे ने दानो को बहिष्कृत कर दिया है। और हाँ वह यह भी मानता है कि प्रत्येक महान अथवा सक्षम पुरुष के कई व्यक्तित्व होते हैं। वह समय और स्थिति के अनुसार अपने को बदलता रहता है।

— फिर तो रावण के दस चेहरे वाली बात बहुत अर्थगर्भित और प्रतीकात्मक है। एक व्यक्ति में दस व्यक्ति, दस विभिन्न प्रवृत्तियाँ एक शारीरिक ढाँचे में।'

शायद यह बहस और चलती या इस बहस में से कोई अन्य बहस जन्म लेती, लेकिन तभी सभी का ध्यान फुटपाथ के नीचे सूखी नाली में पड़े हुए एक काले कुत्ते पर गया। तब तक ऐसा लग रहा था मानो वह वहाँ पड़ा सो रहा था। लेकिन जब उसने अपनी पिछली टाँगों को उठाकर कूँ-कूँ की मरी सी ध्वनि निकाली तब ध्यान उसकी ओर गया।

भवर ने अपने आसन पर बैठे, पान पर कत्थे की डंडी फिराते हुए कहा—आजकल कुत्तों पर काल आ गया है।

तभी सड़क पर चलते दो व्यक्ति और वहाँ रुक गये। उन्होंने बताया कि पाँच सिड़क और आगे मरे पड़े हैं। नगरपालिका के भंगी रसगुल्लों में जहर मिला कर इन्हें खिला गए हैं। कल सुबह तक पचासियों चित मिलेंगे।

नाली में पड़ा कुत्ता जीवन के लिए अंतिम संघर्ष कर रहा था और वहाँ इकट्ठे सभी बंधु मृत्यु के अंतिम प्रहार का क्षण देखने के लिए टकटकी लगाकर उसे देख रहे थे। कुत्ते की दोनों पिछली टाँगें थरथरा रही थीं और वह उठकर भाग जाने का भरसक प्रयत्न कर रहा था। एक बार फुटपाथ की कोर तक उसका मुँह उठा लेकिन पलक झपकते ही वह फिर लुढ़क गया। उसका समूचा शरीर ऐंठन का शिकार हो गया था। धीरे धीरे उसकी कूँ कूँ भी बन्द हो गयी लेकिन टाँगें अभी भी काँप रही थीं।

— यार यह तो अत्याचार है।'

— खतम ही करना है तो टाँगें एक साथ पकड़ कर शूट कर दें।

— दिस इज़ टार्चर।

— जानवर उसी तरह मरता है जैसे आदमी। देखा! अपनी मृत्यु का प्रतिदर्श।

— ए सैयद! देख मालिनों के चबूतरे पर गेंदे की फूलमालाएँ पड़ी हैं। उठाकर असमय ही क्रूर काल के मुँह में जाने वाले इस कुत्ता शरीफ के गले में उन मालाओं को डाल दो। हम सब इसकी मौत के साक्षी हैं। आदमियों के शव के ऊपर तो पुष्प सभी चढ़ाते हैं। आज, कुत्ते को भी यह सौभाग्य मिलना चाहिए। ए भाई दुरह तुम भागकर सिटी लाइट वाले फोटोग्राफर को ले आओ। कुत्ते की अंतिम विदाई के चित्र हम अपने कमरों में टाँगेंगे।

यह एकत्रित रचनाकारों के अगुवा की आवाज़ थी। सैयद ने भावनाओं का आदर करते हुए फूलमालाएँ उठाकर कुत्ते के ऊपर डाल दीं। गर्दन चूँकि सड़क में चिपकी हुई थी, इसलिए कोशिश करने पर भी वह उसकी गर्दन में हार नहीं

डाल सका।

— हम सभी इसी प्रकार मरेंगे।

—'यानी एक कुत्ते की मौत।'

— अपनी मौत मगर इस कुत्ते की तरह ही। शायद मरने स पहले हमे टिटनस हो जाये और समूचा शरीर इसी प्रकार ऐंठ जाये। शब्द हो लेकिन जीभ पथरा जाये।'

—'मत्यु का भव्य साक्षात्कार।'

— भव्य नही। साधारण अति साधारण साक्षात्कार। आज की तारीख म भव्य क्या है? न ज म भ य है, न मत्यु भव्य।

— आज दोपहर मे ये कुत्ता भाग रहा होगा।'

-- काट भी रहा होगा। इस शहर म हाइड्रोफोबिया के केसेज सबसे अधिक होते हैं।

— इसका यह मतलब ता नही कि कुत्तो को इस बबरता से मारा जाये कि प्राण निकलने मे इतनी तकलीफ हो।

— वी आर गेटिंग सेंटिमेन्टल। बेकार के कुत्ता को खत्म कर ही देना चाहिए।

—'व्हाट अबाउट बेकार के आदमी? व्हाट अबाउट वी? हम भी खत्म कर देना चाहिए।

— तुम फिर भावुक हो रहे हो। यह समस्या का हल तो नही है।

— मारो लेकिन बस्ती से दूर ले जाकर तो मारो। इस तरह मौत का तमाशा ता न बने।'

— मौत जिन्दगी का अतिम अनुष्ठान है। उसका जश्न तो मनता ही है।

गले म कमरा डाले फाटोग्राफर दुरुह की साइकिल से उतरा। उसके लिए यह नितान्त नया अनुभव था। साहित्यकारा और उस कुत्ते—दानो को उसने एक ही दृष्टि से देखा और जय भरा स सभी का अभिवादन किया।

— ब धु कुत्त की धौकनी अभी चल रही है। जल्दी स तुम चित्र खींच डालो।

फ्लैश की रोशनी चार बार कुत्ते के शरीर और उपस्थित ब धुओं के चेहरो पर पडी और सभी जस ऋण मुक्त हो गए। भवर ने तब तक जर्दे और मसाले के पान थमाने शुरू कर दिए थ। पान मुह मे दबाकर वे लोग फिर कुत्ते क चारो ओर आकर खडे हो गए।

— वाह री जिजीविषा। अभी तक इसका दम नही निकला है।

यह कहकर दुरुह' ने पान की दुकान से बाल्टी म पडा लोटा उठाया और कुत्ते के मुह पर पानी की धार छोड दी।

ये ले तपण हुआ। जाते जाते गगाजल पीता जा।

पानी पडते ही कुत्ते के शरीर की सारी एँठन दूर हो गयी। पिछली उठी टाँगें धीरे से जमीन पर आकर टिक गयी। कँपकँपाहट समाप्त हो गयी। पेट थोडा फूल गया था। मालूम ही नही पडा कि उसकी अतिम साँस कब निकल गयी।

'गया। निजात मिली।

सभी बन्धु फिर बेंचा पर आकर बैठ गए थे। इस बार आठ अद्धो (आठवां फोटोग्राफर था) का आडर दिया गया था। शहर के कुत्तो के साथ साथ बात अब चूहो पर भी होने लगी थी। कुत्ते और चूहे, इनके अलावा शहर मे है ही क्या?

—'यार। आज तक किसी भी साहित्यकार ने अपना नाम कूकर अथवा मूषक रखा है?

— नही।

—'क्यो?'

— शायद इसलिए कि इन दोनों की उम्र बहुत कम है। इसके बाद वे सभी कुछ देर के लिए चुप बठे रहे।

किस्सा एक तोप का

आधे दाम म हाथी की खरीद भी बुरी नही समझी जाती और वह तो तोप थी। आलीशान तोप। आधे स भी कम दाम मे खरीदी गयी। पसन्द मेरी नही, पत्नी की थी। मैंने तो विरोध किया था। देवी ! तोप के बदले कोई छोटा शस्त्र खरीद लो तो उचित रहेगा। पत्नी न तीक्षण दप्टि से मेरी ओर देखा। नाजुक परिस्थिति को ध्यान मे रख तत्क्षण ही उनका समर्थन कर दिया। 'वैसे ताप बुरी नही है। गाहे ब गाहे काम आएगी।

तोप ठेल पर लदवा दी गई। इतनी बडी तोप क ध पर उठा कर तो घर लाई नही जा सकती थी। बस पत्नी इस व्यथा स पीडित थी कि ठेल वाले को दो रुपये देने पडेंग।

रास्ते भर सोचता रहा— भला यह तोप किस काम आएगी ? न तो इससे *दुश्मन पर वार किया जा सकता ह न ही शिकार किया जा सकता है और ब* मुश्किल दुश्मन पर वार करन का विचार भी कर लिया जाए तब भी बडी मुसीबत—एक घण्टे तक तोप मे ठूस ठूस कर बारूद भरो मशाल जलाओ। फिर रेंज मिलाओ। इतने समय मे दुश्मन तमाशा भी देख लेगा और भाग भी जाएगा। तोप को लेकर पीछे दौडा नही जा सकता ये बातें बहुत आग की हैं। मरे जसा दिल का कमजार व्यक्ति ताप के दशन मात्र से ही घबरा जाएगा।

ताप का ठल स उतार कर दरवाजे के सामने रख दिया गया। मोहल्ले के बच्चा की भीड तोप को घेर कर खडा थी। पत्नी बच्चा की इस भीड का हटाने की नाकामयाब कोशिश कर रही थी। नई पीढी हठ पर थी। उसने पीछे हटना नही सीखा। एक तरफ स हटत, दूसरी ओर जा खडे होत। यह तमाशा काफी दर तक चला। आखिर पत्नी तग आ गई। आना ही था। झल्लाती हुई घर म *चली गई। मैं तटस्थ मुद्रा म खडा हुआ यह सब देखता रहा।*

ठेले वाले को किराया देकर विदा किया।

अब हमारे सामने समस्या थी कि तोप कहाँ रखी जाए ! पत्नी से पूछा। वह पहले स ही झुंझलाई हुई थी। आदतन एक बार तो मुह से निकल ही गया कि मरे सिर पर रख दो।' अगले ही क्षण परिस्थिति की नजाकत देखते हुए

वह सभल गई। और मेरे ही सवाल को जवाब मे दोहरा दिया।

नई पीढ़ी के साथ बीच वाली और पुरानी पीढ़ी भी एकत्र होने लगी थी। भीड बढती जा रही थी। शोर बढता जा रहा था। मैं जल्द से जल्द तोप को घर के अन्दर ले जाना चाहता था। पत्नी ने बढती भीड को देख माथे से पसीना पोछा और कहा—'मेरा मुह क्या देख रहे हो, पकड़ के उठाकर अन्दर क्यो नही ले चलते। भला वह तोप नहीं हुई तमचा हुआ जिसे अँगुलियो पर नचाते हुए कही भी ले जाया जा सके। मुझे गुस्सा आया। चारो ओर लोग खडे थे, वर्ना (वहा से खिसक जाता)। पत्नी के पास जा धीमे से बोला— देवी! तोप को उठाने के लिए चार-पाँच जनो की आवश्यकता होती है। कहने के साथ ही दाँत पीस लिए। और कर भी क्या सकता था। वह पुन शशोपज म पड गई। समस्या सुलझने की बजाय उलझती जा रही थी।

आसपास खडी भीड को आश्चर्य हो रहा था कि इस परमाणु युग मे तोप का क्या काम! वे आपस म बातें कर रहे थे और हँस रहे थे। मैं अन्दर ही अन्दर जल रहा था। इच्छा हुई तोप का मुह इन लोगो की ओर कर पल भर मे सब को उडा दू। कल्पना मात्र से क्षणाश राहत मिली।

कुछ न आगे बढ कर बधाई दी। मैंने लपक कर स्वीकारी। पत्नी पहले स ही कुप्पा बनी हुई थी अब फूल कर कुप्पा न बन पाने के कारण भुनभुना रही थी।

—आपको तोप के पास खडा देख हमे अकबर बादशाह की याद आती है।

—अरे साब! मोहल्ले म तोप रहेगी तो चोर चकार दूर से ही खिसक जाएँगे।

—लेकिन चोर तोप ही उठा ले गए तब?।

—चोर क्या तोप स सिर फोडेंगे!

—तब क्या आपने सिर फोडने के लिए तोप खरीदी है?

—छोडिए जी! मोहल्ले मे अजायब घर की कमी थी—वह पूरी हो गई।

—क्या जी! इस तोप का इतिहास क्या है?

—इतिहास पूछ रहे हो इनसे! भला तोप के साथ क्या लिटरेचर आता है?

—बहुत मुसीबत होगी जब आप इसे घुमाने ले जाएँगे।

—अरे भई, यह तोप है तोप! कोई कुत्ता नही सो इसे घुमाने ले जाया जाए।

—अब एक बात तो खुशी की होगी

—क्या?

—बरसों स इनका प्रमोशन रुका पडा था, वह फटाफट मिल जाएगा।

—कैसे ?

—अरे तोप जो है इनके पास ! बास के बगले तक तोप घसीट कर ले जाएँगे और ललकार कर कहग— करता है या नही प्रमोशन—तोप से उडा दूगा साले को।

—एक बात और—अब आप तोप की दुहाई देकर कई काम हाथो हाथ निकलवा लेंगे।

—जसे—राशन लाना होगा तब राशन वाले से कहेंगे, साले ! पहले राशन मुझे दे—जानता नही मरे पास ताप है।

—कसी बच्चा वाली बात कर रहे हो—तोप क्या इन छोटे माटे कामा के लिए ही है।

—तब क्या बडे कामा के लिए है ?

—और नही तो क्या ! जब दश पर सकट

—छोडिये इन बातो को तोप का इस्तेमाल तो इनस ज्यादा इनकी पत्नी करगी।

—अरे सार ! वो ता पहले से ही क्या तोप स कम है ?

पत्नी का गुस्सा सातवें आसमान स भी ऊपर चला गया। मेरा गुस्सा भी बढता जा रहा था। पत्नी गरजी। मैं चौंका। साचा पडी पडी तोप कस छूट गई। लोग हँस रहे थ। हँसी क पत्थर हम छलनी बनाए दे रहे थ। इच्छा हुई तोप के सामने जा खडा होऊ और सबसे पहले स्वय को ही स्वाहा कर लू।

पत्नी ने फसला सुनाया— इस मुई तोप को अभी के अभी मेरी नजरो के सामने से हटाओ।

मैं भी यही चाह रहा था न मालूम किस कुघडी म ताप खरीदी थी।

कुछ ही मिनटो म तोप को पुन ठले पर लादा जा रहा था बच्चो की भीड ज्यो की त्यो खडी थी। मैं एक बहुत बडी आफत को ठेले पर लदत हुए देख रहा था।

मूल्यवृद्धि पर शोक सभा

एक जनतन्त्रीय प्रदेश का मन्त्रिमण्डल अपनी आवश्यक बैठक में गमगीन बैठा हुआ था। गमगीन होने का कारण था मूल्यवृद्धि। प्रधानमन्त्री ने मूल्यवृद्धि का प्रश्न मन्त्रिमण्डल के सदस्यों के बीच उछाल दिया था। सदस्यों ने लपक कर उस प्रश्न को सभाल लिया, और अब खामोश बठे हुए मूल्यवृद्धि पर शोक मना रहे थे।

खामोशी प्रधानमन्त्री ने ही तोडी। कहने लगे "मेरे खयाल से तो मूल्यवृद्धि उतनी है नही, जितना विरोधी दल शोर मचा रहे हैं।

मन्त्रिमण्डल के सदस्यों को लगा, वे व्यर्थ ही अब तक शोक मना रहे थे। उन्हें अपने व्यर्थ के शोक के लिए अफसोस होने लगा। प्रधानमन्त्री के ठीक सामने बठे एक चपटे मुह के मन्त्री के ओठ खुले विरोधी दल तो नित्य ही तिल का ताड बनाता रहता है। उसकी हम चिन्ता क्यों करें ?

"आप ठीक कहते हैं।'—प्रधानमन्त्री ने तत्काल उत्तर दिया 'मगर हम उनकी बातो को टाल भी तो नही सकते। उनका प्रभाव जनमत पर पडता है। अगले ही वर्ष चुनाव है। हम चुनावों के लिए जनमत का तो ध्यान रखना ही होगा।

चुनाव की बात को सुनकर मन्त्रिमण्डल फिर गमगीन हो गया। चुनाव की भला कैसे उपेक्षा की जा सकती थी ?

मन्त्रियो के शोक को और अधिक बढाते हुए प्रधानमन्त्री बोले—"हमें इस समस्या का कोई हल ढूढना ही होगा।'

प्रधानमन्त्री के सामने थोडा हट कर बठे एक गोल मुह के मन्त्री ने सुझाव दिया हम हर स्कूल, कॉलेज गली बाजार, मौहल्ले व हर गाँव म यह प्रचार करवा दें कि देश म कोई महँगाई नही है। यह तो केवल विरोधी दलों का प्रचार है।'

इस बात को सुनकर सभी मन्त्रियो के चेहरे चमक उठे। उन्हें लगा समस्या का बहुत सरल समाधान उन्हें मिल गया। मगर प्रधानमन्त्री पूर्ववत गम्भीर बने रहे। वे बोले 'इस काय से कोई लाभ होने वाला नही। हमारे सांख्यिकी

—कैसे ?

—अरे, तोप जो है इनके पास ! बास के बगले तक तोप घसीट कर ले जाएँगे और ललकार कर कहेंगे—'करता है या नही प्रमोशन—तोप से उडा दूगा साले को ।

—एक बात और—अब आप तोप की दुहाई देकर कई काम हाथा हाथ निकलवा लेंगे ।

—जैसे—राशन लाना होगा तब राशन वाले से कहेंगे, साले ! पहले राशन मुझे दे—जानता नही, मेरे पास तोप है ।

—कैसी बच्चा वाली बात कर रहे हो—तोप क्या इन छोटे माटे कामा के लिए ही है ।

—तब क्या बडे कामा के लिए है ?

—और नही तो क्या ! जब देश पर सकट

—छोडिये इन बातो को तोप का इस्तेमाल तो इनसे ज्यादा इनकी पत्नी करगी ।

—अरे साँब ! वो तो पहले से ही क्या तोप से कम है ?

पत्नी का गुस्सा सातवें आसमान से भी ऊपर चला गया । मेरा गुस्सा भी बढता जा रहा था । पत्नी गरजी । मैं चौंका । सोचा पडी पडी तोप कस छूट गई । लोग हस रहे थे । हँसी के पत्थर हम छलनी बनाए दे रहे थ । इच्छा हुई तोप के सामने जा खडा होऊँ और सबसे पहले स्वय को ही स्वाहा कर लू ।

पत्नी ने फमला सुनाया— इस मुई तोप को अभी के अभी मेरी नजरो के सामने से हटाओ ।

मैं भी यही चाह रहा था न मालूम किस कुघडी मे तोप खरीदी थी ।

कुछ ही मिनटो म तोप को पुन ठेले पर लादा जा रहा था बच्चो की भीड ज्यो की त्यो खडी थी । मैं एक बहुत बडी आफत को ठेले पर लदते हुए देख रहा था ।

मूल्यवृद्धि पर शोक सभा

एक जनतन्त्रीय प्रदेश का मंत्रिमण्डल अपनी आवश्यक बैठक में गमगीन बैठा हुआ था। गमगीन होने का कारण था मूल्यवृद्धि। प्रधानमंत्री ने मूल्यवृद्धि का प्रश्न मंत्रिमण्डल के सदस्यों के बीच उछाल दिया था। सदस्यों ने लपक कर उस प्रश्न को सभाल लिया, और अब खामोश बैठे हुए मूल्यवृद्धि पर शोक मना रहे थे।

खामोशी प्रधानमंत्री ने ही तोड़ी। कहने लगे "मेरे खयाल से तो मूल्यवृद्धि उतनी है नहीं, जितना विरोधी दल शोर मचा रहे हैं।"

मंत्रिमण्डल के सदस्यों को लगा, वे व्यर्थ ही अब तक शोक मना रहे थे। उन्हें अपने व्यर्थ के शोक के लिए अफसोस होने लगा। प्रधानमंत्री के ठीक सामने बैठे एक चपटे मुंह के मंत्री के ओंठ खुले विरोधी दल तो नित्य ही तिल का ताड़ बनाता रहता है। उसकी हम चिन्ता क्या करें?

'आप ठीक कहते हैं।"—प्रधानमंत्री ने तत्काल उत्तर दिया "मगर हम उनकी बातों को टाल भी तो नहीं सकते। उनका प्रभाव जनमत पर पड़ता है। अगले ही वर्ष चुनाव है। हमें चुनावों के लिए जनमत का तो ध्यान रखना ही होगा।

चुनाव की बात को सुनकर मंत्रिमण्डल फिर गमगीन हो गया। चुनाव की भला कैसे उपेक्षा की जा सकती थी?

मंत्रियों के शोक को और अधिक बढ़ाते हुए प्रधानमंत्री बोले— हमें इस समस्या का कोई हल ढूंढना ही होगा।'

प्रधानमंत्री के सामने थोड़ा हट कर बैठे एक गोल मुंह के मंत्री ने सुझाव दिया हम हर स्कूल, कॉलेज, गली, बाजार, मोहल्ले व हर गांव में यह प्रचार करवा दें कि देश में कोई महंगाई नहीं है। यह तो केवल विरोधी दलों का प्रचार है।'

इस बात को सुनकर सभी मंत्रियों के चेहरे चमक उठे। उन्हें लगा समस्या का बहुत सरल समाधान उन्हें मिल गया। मगर प्रधानमंत्री पूर्ववत गम्भीर बने रहे। वे बोले 'इस काम से कोई लाभ होने वाला नहीं। हमारे साथियों

विभाग ने वस्तुओ के मूल्यो के जो आँकडे प्रकाशित किए हैं, उनस भी मूल्यवृद्धि सिद्ध होती है।"

इस बात पर मत्रियो के चेहरे फिर बुझ गए। साख्यिकी विभाग के प्रति उनके हृदय मे घृणा के भाव उत्पन्न हुए। इच्छा हुई कि साख्यिकी विभाग मे फैली लालफीताशाही की जमकर आलोचना कर दी जाए और उसके प्रमुख अधिकारियों का स्थानान्तरण कर दिया जाए। मगर साहस नही हुआ, साख्यिकी *विभाग इन दिनो खुद प्रधानमन्त्री सँभाले हुए थे।*

प्रधानमन्त्री के करीब बठे एक अधगजे मन्त्री ने तनिक झुककर नम्रता स पूछा "इन आँकडों के अनुसार कितनी मूल्य वद्धि हुई है ?

'मूल आँकडों के अनुसार तो मूल्य वद्धि साठ प्रतिशत पाई गई थी लेकिन उसमे मैंने कुछ सशोधन करवा दिए। जो आँकडे प्रकाशित किए गए, उनके अनुसार *अब यह वद्धि केवल 40 प्रतिशत है।*

"चालीस प्रतिशत भी कोई वद्धि है ? इतना मामूली हेरफेर तो मूल्यो मे होता ही रहता है। —अधगजे मन्त्री ने कहा।

चपटे मुह वाले मन्त्री ने बात को ओर आगे बढाते हुए कहा— मुझे तो लगता है बाजार म वास्तव म कोई मूल्य वद्धि है ही नहीं। मुझस घर पर कभी किसी ने यह चर्चा नही की। न किसी मित्र या रिश्तेदार ने ही मूल्यवद्धि की कभी कोई शिकायत की।'

इस पर प्रधानमन्त्री ने तीखी नजरो स चपटे मुह वाले की ओर देखा। वह सिटपिटा गया। प्रधानमन्त्री ने पूछा—'तुम कहना क्या चाहत हो ?

चपटे मुह वाले ने अपनी बात का स्पष्टीकरण देते हुए दबे स्वर मे कहा— मेरा मतलब है, कहीं हमारे हिसाब किताब म ही तो कोई गडबड नही है ?'

तुम्हारा मतलब है कि मैंने अपने विभाग की ठीक तरह देखभाल नहीं की ?' प्रधानमन्त्री ने चपटे मुह वाले को घूरते हुए कहा।

इस पर चपटे मुह वाला हडबडा गया। उसे लगा कि उसका मन्त्री पद अब कुछ ही समय का मेहमान है। वह लगभग रोते हुए लहजे म बोला नही नही। मेरा मतलब यह नही था। मैं क्षमा चाहता हूँ। मुझे माफ कर दीजिए।

अधगजा मन्त्री भी चपटे मुह वाले को घूर रहा था। वह चाहता था कि प्रधानमन्त्री सचमुच ही चपटे मुह वाले को मन्त्रिमण्डल से निकाल दें ताकि उसके स्थान पर वह अपने छोटे भाई को मन्त्रिमण्डल मे लेने के लिए जोडतोड बठा सके। लेकिन प्रधानमन्त्री न माफ करने वाले अदाज म चपटे मुह वाले की ओर देखते हुए अन्य मन्त्रियो की ओर दष्टि घुमा ली।

'मूल्यवृद्धि का सबसे अधिक असर गरीबो पर पडता है। हमे अपनी दृष्टि से नही गरीबो की दष्टि स मूल्यवद्धि को देखना है। हमारा सबसे बडा

कर्तव्य गरीबों की सहायता करना होना चाहिए।"

प्रधानमन्त्री की इस बात पर कोने में बैठे हुए पिचकी नाक वाले मन्त्री ने आशंका व्यक्त की—"इससे कहीं पूंजीपति और उद्योगपति नाराज न हो जायें। चुनाव के लिए अभी हमने पूरा चंदा भी वसूल नहीं किया है।"

"पूंजीपतियों और उद्योगपतियों की नाराजगी का प्रश्न ही नहीं उठता"— प्रधानमन्त्री ने समझाते हुए कहा—"उनके लिए लाइसेंस और परमिट आदि की वर्तमान व्यवस्था कायम रहेगी। मगर उनके साथ हमें गरीबों का भी ध्यान रखना होगा। आखिर आप लोग क्यों भूल जाते हैं कि धन के लिए हमें पूंजीपतियों की आवश्यकता है तो वोट के लिए गरीबों की। गरीबों के ही वोट समाज में सबसे ज्यादा होते हैं। फिर उनकी उपेक्षा कैसे की जा सकती है?"

पिचकी नाक वाले की समझ में बात आ गई।

इसके बाद थोड़ी देर तक सभी सदस्य मूल्यवृद्धि के लिए फिर से मौन रहकर शोक मनाने लगे।

थोड़ी देर बाद प्रधानमन्त्री ने सभी मन्त्रियों पर सरसरी नजर डालते हुए पूछा—"इस समस्या का क्या कोई हल आपको नजर आया?"

सभी मन्त्री प्रधानमन्त्री की ओर देखने लगे। जैसे हल उन्हीं के चेहरे पर कहीं चिपका हुआ हो।

कुछ मन्त्रियों के दिमाग में एकाध हल उभरे भी। मगर वे खामोश रहे। उन्हें आशंका हुई कि प्रधानमन्त्री उस हल के कारण कहीं उनसे नाराज न हो जायें। उन्हें हल की बजाय अपना पद अधिक प्रिय था।

प्रधानमन्त्री श्रद्धा से लबालब भरे अपने मन्त्रियों की आंखों को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। निर्णय देने वाले लहजे में उन्होंने अपनी राय व्यक्त की— हमारे सामने मूल्यवृद्धि के पीछे दो समस्यायें हैं। पहली समस्या है पूंजीपतियों को खुश करने की और दूसरी समस्या है गरीबों को खुश करने की। जाहिर है कि दोनों को एक साथ खुश रखना आसान नहीं। पूंजीपतियों पर नियंत्रण लगाने से मूल्यवृद्धि तो रुक जाती है और गरीबों को खुश भी किया जा सकता है मगर उससे पूंजीपति नाराज हो जायेंगे। दूसरी ओर यदि हम मूल्यवृद्धि को रोकने के लिए कुछ भी न करें तो उससे पूंजीपति अवश्य खुश रहेंगे मगर गरीब नाराज हो जायेंगे। ऐसी स्थिति में अच्छा यही है कि हम मूल्यवृद्धि की जांच पड़ताल करने के लिए एक आयोग की नियुक्ति कर दें। उससे पूंजीपतियों को कोई हानि नहीं होगी और गरीब भी यह सोचकर संतुष्ट रहेंगे कि हम मूल्यवृद्धि रोकने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं।"

इस पर मन्त्रिमण्डल के सभी सदस्य वाह-वाह कर उठे। कितने सुन्दर और तर्कसंगत विचार हैं? सभी सदस्य इन विचारों की प्रशंसा करते हुए प्रधानमन्त्री

पर अधिक स अधिक मक्खन उडेलने की कोशिश कर रहे थे ।

प्रधानमन्त्री अपने मन्त्रियो स बहुत खुश हुए। कुछ समय पूव उनका विचार मन्त्रिमण्डल म परिवतन करने का था। मगर अब मन्त्रियो की यह भक्तिभावना देखकर उन्होने अपना यह विचार रद्द कर दिया ।

कुछ देर खामोश रहकर प्रधानमन्त्री फिर बोले बस तो उम्मीद है कि *जब तक हमारा यह आयोग जाँच-पडताल करेगा तब तक मूल्यवद्धि अपने आप* रुक जाएगी। आखिर मूल्यवद्धि की भी तो कोई सीमा होगी। लेकिन अगर तब तक मूल्यवद्धि नही रुकी तो हमे इस विषय पर और आगे सोचना पडेगा क्योकि तब तक चुनाव भी काफी निकट आ जाएँगे ।

सभी मन्त्री उत्सुकता से प्रधानमन्त्री की ओर देखने लगे। अभी कुछ समय पूव एक आयोग की स्थापना स जो प्रसन्नता उत्पन्न हुई थी वह अब चुनाव चिन्ता म डूब गई ।

मन्त्रियो की उत्सुकता और चिन्ता देखकर प्रधानमन्त्री स्नेह से मुस्कराये। बोले — चिन्ता न करें चुनावो तक मूल्यवद्धि नही रुकेगी तो हम एकाध महत्व पूण वस्तुओ का राष्ट्रीयकरण कर देंग। इसम जनता तत्काल हमारे साथ हो जायेगी।

इस पर अग्रगजे ने झिझकते हुए शका व्यक्त की—' मगर इसस तो पूजी पति हमारे विरोध म हो जायेंगे।

प्रधानमन्त्री हँस पडे। बोले—' चिन्ता न करो। हम पूण रूप से राष्ट्रीयकरण नही करेंगे। उन वस्तुओ का थोडा उत्पादन पूजीपति भी कर सकेंगे। राष्ट्रीय करण के बाद स्वभावत वस्तुए बाजार मे पर्याप्त मात्रा म उपलब्ध नही होगी। इससे पूजीपति अपने भाग क उत्पादन को ऊची कीमत म बेचकर पूरा फायदा उठा सकेंगे। इसके अलावा राष्ट्रीयकरण म भी पूजीपतियो को विशेष लाइसेंस आदि देकर आसानी से खुश रखा जा सकता है। फिर एक बात और भी। राष्ट्रीयकरण की घोषणा से पहले ही हम पूजीपतियो से अपना चुनाव चदा ले चुकेंगे। इसलिए तब उनकी नाराजगी की अधिक चिन्ता भी नही रहेगी। आप लोग यह ध्यान रख कि यह योजना हम लोगो स बाहर न जाए।

सभी मन्त्रियो न प्रधानमन्त्री क आगे सर झुका दिय ।

बठक स्थगित हो गयी।

आकस्मिक अवकाश

आकस्मिक अवकाश भी क्या चीज है। सरकारी कार्यालय या यूँ कहिए कि सरकारी कर्मचारी और आकस्मिक अवकाश का जैसे चोली दामन का साथ है। इसके विस्तृत विवेचन के लिए हमें दोनों शब्दों पर अधिक प्रकाश डालना होगा।

'आकस्मिक' यानी वह घटना जो अकस्मात घटे—मसलन सौ बार टालने पर भी पत्नी जिद करे कि आज शाम तो आप परिवार को पिक्चर दिखा ही दें। साढ़े तीन रुपये प्रति व्यक्ति की दर से परिवार की पूरी हाकी इलेवन पर होने वाले व्यय के अनुमान मात्र से आपको झुरझुरी छूट जाती है और तब आपको अकस्मात यह ध्यान आता है कि आज तो आफिस में ढेर-सारा काम है और आपको काफी देर तक रुकना होगा। या यह कि ऑफिस मे कोई चैरिटी शो के टिकट खरीदने के लिए साधिकार आग्रह करता है और अकस्मात ही आपको यह ध्यान आता है कि आज तो आपको चाचाजी को देखने अस्पताल जाना है। अकस्मात घटने वाली ऐसी घटनाओं की सूची लम्बी है, मगर मैं यह मानता हूँ कि विज्ञ पाठकों को इन्हीं से आकस्मिक शब्द का अर्थ समझ में आ गया होगा।

केवल अवकाश ही एक ऐसी स्थिति है जिसमे व्यक्ति ऑफिस के रोजमर्रा के आराम से बोर होकर एकाध दिन किसी ऐडवेंचर में गुजारना चाहता है। यह क्या कि रोज रोज वही ग्यारह बजे दफ्तर पहुँचे, बड़े बाबू से दीन-दुनिया के बारे में गपशप की, गंभीरतापूर्वक इस बारे में विचार किया कि अमरीका को वियतनाम के बाद अब कहाँ नया पैंतरा लड़ाना चाहिए या अगले आम चुनाव के लिए अमुक पार्टी की क्या नीति हो, आदि। चाय का एक दौर कहकहों के साथ पूरा किया। फाइलों के अथाह ढेर में से एकाध फाइल छाँटी, जिस पर कुछ ऐक्शन लिया जाए। फिर लंच के लिए चल दिये। डेढ़ घंटे बाद वापस आये, उक्त फाइल पर अड़ंगा लगाने वाले स्टाइल में छोटी-सी टिप्पणी लिखी। साथी बाबू के साथ विश्वनाथ की बलनेबाजी की संभावनाओं पर विचारों का आदान प्रदान किया। पान और चाय के एक दौर में हिस्सा लिया। खर्राटे भरे और

वापस घर चल दिये।

रोज की इस एकरसता से ऊब जाना लाजिमी है। ऐसी ऊबवाली जिंदगी म एक खुशगवार सुबह आदमी यह साचे कि चलो आज का दिन कुछ 'थ्रिलिंग' से मनाया जाए जसे क्यो न राशन की दुकान स शकर और किरासीन लाने की कसरत कर ली जाए या क्यो न बुखार सिरदद के नाम पर दिन भर घर पर रहकर पत्नी से वाक युद्ध म सलग्न हुआ जाए ?

अब हमारे लिए आकस्मिक अवकाश नामक इस प्रक्रिया के उपयोग पर कुछ प्रकाश डाल लेना उचित होगा। यह अजीब जरूर लगेगा मगर जानकारी द्वारा इसे सत्य पाया गया है कि इसका उपयोग सुविधा के रूप मे कम हथियार के रूप मे अधिक किया जाता है। बाबू सीट पर स कुछ समय गायब रहा और अधिकारी जरा अनुशासनप्रिय हुआ तो सम्मन जारी कर दिया उसके नाम और हाजिर होते ही जारी कर दिया यह फरमान कि मिस्टर लगता है आप कार्यालय और घर म भेद करना भूल गये हैं। आप फौरन आज का आकस्मिक अवकाश प्राथना पत्र प्रस्तुत कीजिए और चलते फिरते नजर आइए।'

दूसरी ओर बाब को अफ्सर ने कुछ काम दिया उसकी प्रगति के बारे मे जवाब तलब करते वक्त उसे सतोष नही हुआ और यदि उसने डाटने डपटने का उपक्रम किया तो तज बाबू फौरन बोला श्रीमानजी यह तो आपका लिहाज करके और यह सोचकर कि यह काम कितना महत्वपूर्ण है मैं कार्यालय चला आया था वरना मैं तो आज आकस्मिक अवकाश पर रहने वाला था। खर यह लीजिए मेरे आज के आकस्मिक अवकाश का प्राथना पत्र और इजाजत दीजिए। कल सवेरे आपसे फिर भेंट होगी।"

ऐसा नहीं है कि हथियार के रूप मे इसके प्रयोग की परम्परा सिफ कार्यालय परिसर तक ही लाग हो। काफी वक्त इसे घर की चहारदीवारी म प्रयुक्त होते भी पाया गया है। बिना किसी बात पत्नी के तेवर चढते दिखायी दिये तो पति महाशय न निशाना साधकर हथियार चलाया— होश म रहो और सभल जाओ वरना मैं कल स ही आकस्मिक अवकाश लेकर कार्यालय जाना बन्द कर दूगा। पडोसियो से दुनिया भर की गपशप का सिलसिला बन्द होते ही अक्ल ठिकाने आ जाएगी। फौरन वह घुटने टेक देती है और बात बन जाती है।

कभी कभी पत्नी इस पति के विरुद्ध काम म ले लेती है। घर पर शाम को मेहमान आने वाले हैं और पति महोदय दिन भर के काम के भय स समय पर दफ्तर जाने के लिए जल्दी जल्दी तयार हो रहे हैं। ठीक काउट डाउन के अवसर पर पत्नी की घोषणा सुनायी पडती है— अजी मैंने कहा आज घर के काम से बचने के लिए दफ्तर की शरण लना सभव नही है। सीधी तरह से आकस्मिक अवकाश का प्राथना पत्र भिजवाइए और मेरे साथ काम मे जुट जाइए।

खैर, गनीमत यह है कि हथियारों की बेतहाशा दौड़ में व्यस्त देशों को इस हथियार का खयाल नहीं आया वरना पेट्रोल के बाद इसी का नम्बर आ जाता।

हमारा देश एक शांतिप्रिय देश है। तदनुसार देश में हथियारों के आम इस्तेमाल पर पाबंदी लगी हुई है (बेलन जैसे कुछ घरेलू हथियारों को अपवाद स्वरूप छोड़ दिया गया है।) इसी से प्रेरित होकर एक अनुशासनप्रिय अफसर द्वारा आकस्मिक अवकाश रूपी हथियार पर भी नियंत्रण लगाने की बात सोची गयी। तत्काल यह आदेश जारी किया गया कि आकस्मिक अवकाश कोई जन्म सिद्ध अधिकार नहीं है। इसका प्रयोग अधिकारी की अग्रिम स्वीकृति के बिना नहीं किया जा सकता। नतीजा यह हुआ कि कार्यालय में कुछ दिलचस्प किस्म के प्रार्थना-पत्र आने लगे, जैसे—

महोदयजी,

सेवा में नम्र निवेदन है कि प्रार्थी को ऐसी आशंका प्रतीत होती है कि अगले मंगलवार को उसके सिर में दर्द होने की संभावना है। अतः आपसे अनुरोध है कि उक्त दिन के लिए अवकाश प्रदान करें।

सधन्यवाद,

आपका आज्ञाकारी आदि, आदि

अधिकारी ने गुस्से में घंटी बजायी और फौरन प्रार्थी को तलब किया।

'इस प्रार्थना पत्र का क्या मतलब ?'

'श्रीमन बात ऐसी है कि सिर में दर्द न हुआ तब तो कोई बात नहीं, आफिस आ जाऊंगा और इस प्रार्थना पत्र को रद्द करवा लूंगा। मगर, मान लीजिए कि सिर दर्द हो ही गया तो यह स्वीकृत किया हुआ प्रार्थना पत्र कितना काम आयेगा। मैं तो सावधानी बरत रहा हूं ताकि कानून भी न टूटे और आवश्यकता पड़ने पर मुझे परेशानी भी न हो।

'गेट आउट, अफसर दहाड़ा।

एक अन्य स्थिति में अधिकारी के पास इस किस्म का प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत हुआ—

'मान्यवर

अभिनन्दन सहित निवेदन है कि कार्यवश अधोहस्ताक्षरकर्ता 7 और 8 तारीख को कार्यालय में उपस्थित न हो सकेगा। कृपया उस 'फरलो' पर रहने की स्वीकृति प्रदान करें।

भवदीय,

फलां फलां'

अधिकारी 'फरलो' का क्या मतलब ?

कर्मचारी (भोलपन स) मतलब साफ है, यानी आफिशियली तो मैं ड्यूटी पर रहूँगा मगर वास्तव म छुट्टी मना रहा हूँगा।

अधिकारी यू शट अप।

कमचारी थक्यू सर।

आय न्नि होन वाली इस प्रकार की स्थितियों से परेशान होकर अफसर ने अपने आदेश को ढीला छोड दिया और कार्यालय म इस हथियार का फिर स स्वछन्द प्रयोग किया जान लगा।

जिज्ञासा होती है—क्या इस हथियार पर नियन्त्रण लगाना सभव नहा है। आखिर हर हथियार की काट बन गयी। तलवार के लिए कवच, भोले के लिए ढाल, यहाँ तक कि मिसाइल स लिए ऐंटीमिसाइल बन गयी तो फिर सिफ इस आकस्मिक अवकाश नामक हथियार की ही कोई काट क्यो न बनी ? यदि कोई बनाये तो अवश्य नोबल प्राइज पाये।

सर्वहारा शून्य

मेरे एक दोस्त को टिक हो गई है। 'टिक' शब्द 'तपेदिक' की छटन है। यही यह रोग कभी राजरोग कहलाता था। जब से सरकार ने राजाओं को आम नागरिक की लाइन में खड़ा कर दिया और उनको कबूतर उड़ाने से लेकर होटल चलाने का काम करना पड़ा, इस राजरोग का भी अवमूल्यन हो गया। तपेदिक यानी यक्ष्मा यानी टी० बी०, राजरोग के बजाय जनरोग हो गया। यह इस तरह मामूली लोगों का मामूली रोग हो गया जैसे कभी का मन्त्री चुनाव में हारने के बाद सड़क छाप आदमी हो जाता है। उसके आदमी हो जाने के मतलब यह कभी नहीं लिया जाना चाहिए कि जब वह मन्त्री था तब आदमी नहीं था। मान लिया जाय कि तब वह आदमी नहीं था। तब वह क्या हो सकता था? आप सोचिए क्या हो सकता था? रिक्त स्थान में 'पूर्ति' आपके अनुभव और अक्ल का सबूत देगी।

यह विषयांतर हो गया जो हर बुद्धिवादी की विशेषता होती है। क्योंकि बार बार विषय से बिदकना, बछड़े की तरह उछाल मारना, दरार खाये व्यक्तित्व (स्प्लिट पर्सनेलिटी) का लक्षण होता है। और वह बुद्धिजीवी क्या जो स्प्लिट पर्सनेलिटी न हो।

किसी उम्र में—यानी जवान उम्र में—मेरा यह दोस्त अच्छा खासा मलंग था। दो दो सौ दण्ड पेलता था। अखाड़े में दाँव पेंच सीखता था। वह जानता था कि हिन्दुस्तानी पहलवानी दाँव पेंच की कला पर निर्भर करती है, जबकि विदेशी पहलवानी कोरी जानवरी ताकत से चलती है। मानना पड़ेगा कि कम विकसित देशों में खेल से लेकर आध्यात्मिकता तक में कला का वर्चस्व मिलेगा —बारीक और सूक्ष्म कला में, शून्य तक की यात्रा करती हुई कला। शायद इसलिए कि कला और गरीबी का शाश्वत गठजोड़ है। अल्प विकसित देशों में गरीबी इस तरह उगती फलती आई है जैसे बरसाती दिनों में घूरे पर घास और कुकुरमुत्तों का वंश।

मेरा दोस्त इसलिए अखाड़ेबाजी नहीं करता था कि उसे भारत श्री बनना था या विश्व चैम्पियन का खिताब जीतना था, बल्कि उसके दिमाग में पुरानी

रटी हुई कहावत कही अडी हुई थी कि त दुरुस्त जिस्म मे स्वस्थ्य दिमाग रहता है और कि वही राष्ट्र प्रसिद्ध और विश्व प्रसिद्ध साहित्यकार बन सकता है जा शरीर से गबरू हो।

यानी मेरे दोस्त क दिमाग मे उसकी अपनी एक आदश छवि थी (उसे विश्व प्रसिद्ध साहित्यकार होना है। एक दिन अवश्य नोबेल पुरस्कार प्राप्त करना है)। जिस वह पूरी योग साधना व साहित्य साधना क जरिय किसी दिन पाना चाहता था।

उसने बडे बडे साहित्यकारो की सफलता के रहस्य को पहिचानने की इस तरह कोशिश की थी जसे सी० बी० आई० या के द्रीय जासूसी सगठन का कोई दक्ष और दीक्षित सदस्य किसी पेचीद मामले के रहस्य का पता लगाता है। पहले तो उस यह लगा कि बडे साहित्यकार बनने के लिए भारतीय दशन और सस्कृत साहित्य को पढना जरूरी है क्योंकि दशन के बने बनाये साँचे म कविता ढाली जा सकती है सस्कृत साहित्य अपने मे इतना समृद्ध और सौंदयपूत है कि उप मायें और कल्पनाएँ वहाँ स कितनी भी सख्या और मात्रा मे उडा ली जायें भडार खत्म ही नही हो सकता। इस कची-सफाई साहित्यिक सिद्धहस्तता म एक सुख यह भी था कि अग्रेजी सत्ता की कृपा स पढे लिखे बुद्धिजीवी सस्कृत भाषा के मामले म ठोठ थे (बाकी जो बहुत बडी जनसख्या थी वह तो निपट निरक्षरवादी सम्प्रदाय की थी ही)।

मेरे दोस्त ने अपना प्रारम्भिक साहित्य इसी साहित्यिक कारगुजारी स शुरू किया। यह हिन्दी साहित्य भी अजीब कलाबाज है! जब तक मेरा दोस्त उस आध्यात्मिक स्तर या तह तक पहुचता कि कालजयी रचना लिखता, साहित्य लुढकन लोटे की तरह लुढकने लगा—साहित्य म खयाम की दारू और उसकी नाजनीन साकी ने असर दिखाया तो रूस क लाल झडे साहित्य म चिपकने लगे और इलियट और अस्तित्ववादियो के चेले चाटे पदा होने लगे!

वनस्पति विज्ञान म वनस्पति पदा होने का एक कारण है—फल जब काफी सूख जाता है, और उसका सारा हरापन गायब हो जाता है तब वह फटता है। तब उसके मुलायम रायें धारी बीज हवा म उडत हुए सत योजनी समुद्र को भी पार कर जात हैं और धरती पर छितर जात है। जहा उपजाऊ जमीन मिलती है वहाँ पौधे की शक्ल म उग आते हैं।

मेरे दोस्त ने साहित्य विज्ञान तो पढा था लेकिन वनस्पति विज्ञान नही पढा था। वह यह तो नही समझ सका कि यह मामला क्या हुआ कि विदेशी *माल की तरह साहित्यकारो के दिमाग पर विदेशी साहित्य कस उगने लगा* (जबकि किसी भी साहित्यकार की खोपडी खलवार नही थी) पर वह यह भी नही समझ सका कि स्वदेशी साहित्यिक लघु उद्योगी कला पर ऐसे कौन सा

जजिया या टैक्स'लग कि सारे के सार साहित्यकारो का मालवाही, हम्मा न बनना पडा।

समस्या मरे दोस्त क सामन 'क्यो और कस हुआ' की नही थी (वह तो साहित्यकार बनन का स्वाद दख रहा था—यूनिवर्सिटी क प्रोफेसर या साहित्यिक डाक्टर बनने का थोडे ही !) उसके सामन मुश्किल यह थी कि अब वह किसकी बाँह गहं'?

साहित्य म एक दूसरी तरह की घमचक मची हुई थी। साहित्यकारा की फस्ट एलेविन, सकेंड एलविन थड एलेविन की टीम हॉकी फुटबॉल खेलती थी, और उनके प्रशसक दशक-आलोचक, चियर अप, बकअप, करत थ।

मेरे दोस्त ने मुझे बताया, उस वक्त भरी हालत एसी हो गई जैस शाम के धुधलके म कोई हिरन, इसलिए चौंधिया गया हा कि उसके तीन तरफ, जीप, कार ट्रक हो, और तीनो की रोशनी सीधी उसकी आँखा पर पड रही हो।

मेरे दोस्त ने दाशनिक चेहरा बनात हुए कहा था —अस्तित्व का सकट आदमी दो तरह स महसूस कर सकता है—एक ता तब जब उमकी अपनी रची आदश छवि खतरा महसूस करती है। यह वह क्षण होता है जब उसकी आध्यात्मिक चेतना सास्कृतिक चेतना मूल्य चेतना यहाँ तक कि विकल्पावरण चेतना सुनता की स्थिति प्राप्त कर । लगती है जस उस एनस्थीसिया दिया गया हो। चेतना अपने अशी अश रूप अस्मिता का खाने खाने की दशा म आ जाती है।

मैंने इस अस्तित्व सकट का उस समय महसूस किया तथा बौखला कर तीनों तरह की टीमा म बारी बारी स मला था। लेकिन प्रशसक-दशक आलाचकों की बेईमानी देखो मुझे और मेरी साहित्यिक कलाकारिता का प्रशसा पत्र तक नही दिया गया। प्रशसा पत्र ता क्या धय धारण पुरस्कार (कसोलेशन प्राइज) तक नही घोषित किया।

बेशक मेरी सजनात्मक अस्मिता न अस्तित्व का सकट उसी तरह झेला जिस तरह द्वितीय विश्वयुद्ध दौरान पश्चिम की सामूहिक चेतना न भुगता था, लेकिन मैं उस सकट को झेलता हुआ पनी गुमगुदा चेतना की तलाश करता रहा। आखिर मेरी चतना भारतीय नस्ल की चेतना थी, चाहे कितने लम्बे काल की पराधीनता को भोगने के लिय बाध्य रही, कितने ही मायावी मारीच उसे लिरियाने के लिय आए वह जोनियाँ और जम क चक्र को पार करती हुई भी अछीजी रही। मुझे इस अनुभव से गुजरते हुए कई लौकिक व पार्थिव सत्य हाथ लगे थे लेकिन मेरा प्रांजल अहकार और शुद्ध स्वाभिमान उन तुच्छ सत्यो को स्वीकार नहीं कर सका।

साहित्य सघष का सबस बडा सत्य यह था कि मुझे किसी प्रभावशाली 'दादा साहित्यकार के चरणागत जाना चाहिये था, उसकी चरण रज का तिलक

लगाकर उसके नाम की हजारी माला जपनी थी, मैंने वह नहीं किया।

उसके दरबारी आलोचकों के मसका मसाज करनी थी लेकिन मैंने इस तरह का कोई प्रशिक्षण प्राप्त नहीं किया था, न मैं पैदाइशी नाई था।

मुझे अपनी रचनाओं को दल-नेताओं को समर्पित करना था—चाहे वह मिनी कविता होती या महाकाव्य, चाहे चुटकुला या महत उपन्यास।

मुझे सम्पादक-श्रेष्ठियों को नजराना वजराना देना चाहिये था (उनके मूड और आवश्यकता के अनुसार) वह भी मैंने नहीं दिया।

मेरे दोस्त ने दर्प के साथ मुझ से सवाल करते हुए पूछा था—तुम बताओ क्या कोई भी स्वाभिमानी और आत्मविश्वासी साहित्यकार इस तरह से पहिचाना जाना पसन्द करेगा? मैंने तो लानत भेजी ऐसे तरीकों पर लेकिन साहित्य सृजन से नहीं हटा। नोबेल पुरस्कार पाने का ख्वाब ऐसे हालात में भी जिन्दा था और यह भी सोचता था कि कभी न कभी स्वदेशी लखटकिया पुरस्कार या अकादमीय पुरस्कार मारूँगा—आखिर तो साहित्य साधना कर रहा था नमक मिर्च-मसाला नहीं बेच रहा था।

दूसरी तरह के जिस अस्तित्व के संकट का जिक्र मेरे दोस्त ने बताया उसका प्रत्यक्षदर्शी तो मैं खुद रहा।

मेरे दोस्त ने आदर्श के झोंक में एक ऐसी लड़की से शादी कर ली जो किसी वक्त वेश्या बाजार की शोभा रही थी। ऐसा भी कहा था कि वह प्रेम विवाह था या किसी मजबूरी में किया गया विवाह। उसने कसम खाकर यह कहा था कि मेरा यह कतई उद्देश्य नहीं था कि आलोचक अगर मेरे साहित्य को उसकी आन्तरिक श्रेष्ठता के कारण वाजिब कोटि नहीं देते हैं तो मैं इस आदर्श विवाह के माध्यम से प्रचार तथा प्रतिष्ठा पाऊँ। यह मेरे संवेदनशील हृदय का दायित्व बोध था।

मेरे दोस्त की पत्नी उस वक्त भी टटकी जूही की कली लगती थी। मेरा अनुमान था उसकी सम्वेदना सौंदर्य के भोग की परिष्कृत अनुभूति के बाद अवश्य उदात्त स्तर का साहित्य रचेगी। निश्चित रूप से वह प्रेम काव्य का अद्वितीय उदाहरण होगा।

मेरा अनुमान यह भी था कि क्योंकि आधुनिक जिन्दगी में प्रेम साहित्य सड़क छाप साहित्य में घटिया होकर आ रहा है इसलिये मेरा दोस्त नया मानक अवश्य स्थापित करेगा। लेकिन परिणाम विपरीत आया। सृजन दूसरा मोड़ ले गया और दो दशक में पाँच बच्चे पैदा हो गये। किसी समय की वेश्या बाजार की मेनका गृहस्थी में आकर कच्ची बस्ती की रहने वाली किसी प्रौढ़ा सरीखी हो गई। मेरा मलंग दोस्त दारू और जोरू का तात्विक साधना करते-करते निपट सर्वहारा स्थिति में आ गया—कृषगात, आँखें गड्ढों में, चेहरे की हड्डियाँ

ऊबड़ खाबड़ सड़क सी। मैं अगर अपनी याद से कोई परिचित चित्र सामने रखूँ जो उसकी शक्ल का साम्य बताए तो वह था कवि मुक्तिबोध का अंतिम वक्त का भयानक चेहरा।

फर्क इतना था कि मुक्तिबोध का वह चेहरा मरने के वक्त का था, जबकि मेरे दोस्त का वैसा हुलिया उसके जिंदा रहते हुए था। उसे तपेदिक भी हो गई और दूसरी बीमारियों ने भी घर रखा है।

वह कहता है अस्तित्व का यह जिस्मानी संकट बोध है, जिसे मैं हर क्षण भुगत रहा हूँ। मेरी आदर्श छवि अभी भी अछूती है। मेरी नोबेल पुरस्कार की कामना अब भी अखण्ड यौवना है। बस यह शरीर संकटग्रस्त है।

अपने को पहिचानने की कोशिश करता हूँ तो ऐसा लगता है मैं 'वह' हूँ ही नहीं, जो कभी था। तर्कपूर्ण शृंखला में अपने से सवाल करता हूँ 'वह' नहीं है, तो कौन है? क्यों है? वैसा नहीं, ऐसा है तो कैसे है?

दोस्त बताता है—सवालों के उत्तर में मुझ में एक शून्य बोलता है। मैं चीन्हना चाहता हूँ कि यह सर्वहारा शून्य है या शून्य का रूपान्तरण सर्वहारापन में है।

लेकिन इस हालत तक पहुँचने के बावजूद भी वह अपनी पत्नी को दिलासा देता रहता है कि तुम्हारी अग्नि-परीक्षा है सीते एक दिन तुम्हारा राम अवश्य साहित्य में चक्रवर्ती पद को प्राप्त करेगा। नोबेल पुरस्कार उसके सिर पर मुकुट की तरह सुशोभित होगा। लखटकिया पुरस्कार सुदर्शन चक्र की तरह उँगली पर घूमेगा। चरण के नीचे अकादमी पुरस्कार का शतदल कमल होगा। तुम्हारे मर्यादा पुरुषोत्तम की यश पताका विश्व साहित्य पर फहरेगी। तुम्हारे पुत्र-पुत्री पिता के यश से सम्पन्न होकर प्रकाशन संस्थानों के एकाधिकारी अधिपति होंगे।

बेचारी सीता स्वप्न सम्मोहिता हो उस दिन को राजसी चक्षु से देखती है जिस दिन उसके राम की कल्पनापुरी साक्षात उसकी रहाइशपुरी होगी।

मेरी समस्या और भी गम्भीर है। मैं आज तक नहीं समझ पाया कि मेरा दोस्त वास्तव में मूर्त है या मेरे अन्त का अमूर्त बिम्ब।

और अगर यह अमूर्त बिम्ब है तो अवचेतन की अंध गुहा से मुक्त हुआ शिशु है या परचेतना से प्रतिबिम्बित मायावी वटुक अवतार।

सम्भवतः नितान्त चेतना की रूपान्तरित स्थिति हो तो कह नहीं सकता वरना यह मेरा दोस्त युग तथा काल को पार करता हुआ अब भी कैसे जीवित है जब कि असाध्य तपेदिक में ग्रस्त है।

अपनी चेतना के सन्दर्भ में संदिग्ध होना क्या अस्मिता का गुम हो जाना नहीं है?

आश्चर्य है उत्तर में मुझ में भी एक शून्य प्रतिध्वनित हो रहा है। यह सर्वहारा शून्य है या शून्य का सर्वहारा रूप!

मेरा दोस्त भी इसी शून्य को गुनता था। पता नहीं वह गुनता था या मैं अपने शून्य को सुनाता रहा हूँ।

यह शून्य शब्द-ब्रह्म है या आत्म भ्रम!

जब मैं ही निश्चित नहीं कर सकता तो आलोचक क्या तय कर पायेंगे। तब मेरे दोस्त के बारे में कैसे निश्चित हो सकता है कि वह 'था' या 'है' भी या मेरा वहम है।

पोशीदा राज

क्या बतायें ? बात ही ऐसी है। साँप छछूंदर वाली हालत हो रही है, लेकिन जब दिल का राज खोलना सोच ही लिया तो कैसी शर्मोहया ?

बात यह है कि जाने किस मनहूस घड़ी मे हमारी दादी नानी और माँ ने अपनी मेम साहब को दूधो नहाओ पूतो फलो —की दुआ दे दी थी कि उसका नतीजा आज तक हम भुगत रहे हैं। ईश्वर ने कुछ ज्यादा ही मेहरबानी हम पर की है। अजीब न्याय ! वरना क्या हम अपने घर मे इकलौते चिराग रह जाते ! हमेशा माँ गण्डे तावीजों से त्रस्त रहती इस डर से कि एक आँख का क्या ? दायाँ-बायाँ भरापूरा रहना चाहिये, लेकिन उनकी हम एक आँख ही रहे परन्तु इधर ? हे भगवान !

अब हम अकेले जो रहे तो लाड प्यार का यह परिणाम निकला कि पढ़ाई मे निहायत कमज़ोर दिमाग रहे घिसट घिसटाकर इतना ही कर पाये कि आज क्लर्को की चक्की में पिस रहे हैं उधर पैनी सावधानी से भरी देख रेख मे पलने के कारण शरीर भी पूरा विस्तार नही ले पाया। सूत सुतली से हाथ पाँव सीना इतना तंग कि कपड़े पहनने को मन न करे—चेहरे की हड्डियाँ ऐसी खौफनाक कि आईना उठाने को मन नहीं—चार दोस्तो के साथ उठने बैठने में शर्म खाने पीने की क्या कमी ? पर मजाल है कि उन्नीस बीस का फर्क आ जाये ?

जी हाँ बताते हैं अब कम भी हों भीतर दिल तो धड़कता ही था न ! इसलिये स्कूली दिनो मे ही हम एक खूबसूरत लड़की का चुपचाप पीछा किया करते—उसे देखा नहीं कि आँखें वहीं बिछकर रह जाती। एक दिन उसे जाने क्या सूझा कि गली के मोड़ पर रुक कर एक जान लेवा मुस्कान फेंक दी। हम बाग-बाग होकर पास आ गए। मन उछल कर मुँह पर जैसे ही उसके पास पहुँचे कि वह ठठाकर बोली 'जनाब ! कभी तीज त्योहार शीशे मे मुह देखा है ? कभी देखें हैं मुह मे खुदे गड्ढे ! वाह ! यह सूरत और ऐसी आसमानी उड़ानें ?"—वह तो कहकर रफूचक्कर और इधर काटो तो खून नहीं। अपमान से काले पड़ गये। मौत आये, जमीन फटे हम समा जायें। बैठे वहीं मानिये

वही हालत आज भी है बल्कि उससे भी बुरी बदतर यही तो वजह है कि शीशा उठाते ही वह लडकी सामने खयालो म आ जाती है।

घर म मा के अलावा मौसी और बुआ भी हैं। बुआ से बचपन स ही डरते हैं। बडी रोबीली औरत है। हमारी बूढी मिसरानी कहती है कि इनकी पीठ पर साँपिन है तभी तो शादी के चार महीने बाद ही विधवा होकर इस घर म आ गई। माँ तो लाई इस विचार से कि विधवा की क्या औकात ! दोनो जहानो से बेकार ! दो रोटी इनकी भी सही। ले आइ लेकिन यह आते ही हो गई दरोगा कोतवाल। मा ठहरी सीधी सरल—बस पूरे घर म बुआ की तूती एक ये मौसी ! इनका भी यही हाल – कहते हैं जब यह अगीठी सी दहकती रहती तो पिताजी पचास हाथ दूर रहते—क्या पता कब आग पकड ले ! अब तो खर उस मजिल स मीलो आगे निकल गई हैं लेकिन पिताजी आज भी नजर पल्ला समेट कर रहते है भण्डारे स लेकर बड सन्दूको अल्मारियो की चाबियाँ इन्हीं दोनो के कब्जे म रहती हैं—इन्हीं की हुकूमत। रहती मुसीबत हमारी माँ का मिलता प्यार लाड और इन दोनो की आखें हमे खाती रहती। शतानी पजो की तरह पीछा करती। इसीलिये न कभी गुल्ली डण्डा खेले न कभी पतगो के पेंच लडाये—न कभी छत्त मुडरो से दूसरों के आँगन पर्दे छाने। वो तो ईश्वर की मर्जी स सुन्दरता कोसो दूर रही वरना य दोनो हम कनाता म कसकर रखती। तो इस नजरबन्दी क कारण भी हम पलस्तर कर रह गये। मरियल और चिडचिडे। जवानी के क्या आलम होते हैं कसे तूफान उठते हैं हम नही जान सके—हाँ अगर हिम्मत करके सीमा स बाहर होकर कोई हरकत करने की चेष्टा भूले भटके की भी तो इन दोना क सामने बठकर घण्टो अच्छे चाल चलन पर बडी उबाऊ सीखें सुनी कान पकडे और कसम खाइ फिर क्या रहता खाक ? कभी वार त्योहार या और कि हा उत्सव समारोहो पर इष्ट मित्रा, नाते रिश्तेदारो के यहा जाना जरूरी हो जाता हमारा, तो य दोनो दो-चार निठल्ले लडको को हमारे पीछे लगा देती, कि कहीं हम इस उसकी नजरो मे उलझ बिखर न जायें ? किसी महदी हथेली को पकड न लें ? इस खुफियाचोर हरकतो के कारण कभी भी चोरी छुप भी किसी खुशबू भरे साये का सामना नही हो सका। बस शुरू से अपने ही शरीर की गुनगुनी हरारत महसूस करते रहे। औरत की परिभाषा उसका स्वभाव और उसका साथ एक सपना रहा—यही सपना हमारी बरबादी का कारण बना रहा।

अब सुनिये असली कहानी यहा स प्रारम्भ है। बकौल इन दोनो के हम अब विवाह के काबिल हो गय थ। तेईसवां पार कर चौबीसवें पर आये कि शादी का हगामा शुरू। हम क्यो झूठ बोलें मन की सबसे बडी साध ही यही रही कि अपने घर की दीवारा म ही सही किसी का दशन तो हो बस हमारे सिर हिलाने

की देर थी कि चुनाव हो गया। बडी धूमधाम से इकलौते बेटे की बहू आई। आई क्या पूरे घर की नजर उसी पर लग गई। इतनी महगाई में भी सुबह शाम उन्हें पिस्ते बादामो का हलुआ, दूध दही मलाई दी जाती—वही बहू यह न समझ कि किस कीचड घर में आ गई। इस रख रखाव का नतीजा हुआ कि फूल कर कुप्पा हो गई। नैन नक्श और तीखे—चेहरे पर चमक—कघी चोटी, काजल बिंदी से दुरुस्त रहने लगी। तरह तरह की रगीन साडियाँ और लाली-पाउडर। काम कुछ नहीं करने को। बस हूर बनी बैठी रहें बहूजी। हम रात दिन भूलकर उन्हीं के हो लिये। दफ्तर दोस्त सब ताक पर धर दिये।

दिन गुजरे कि बहूजी ने नम रुई सा पिण्डा मौसी बूआ के हवाले कर दिया। माँ पिताजी प्रसन्न। साहबजादे आ गये थे नये। कई दिन धूम धडाका रहा। खूब दावतें, गीत और न्यौछावरें—ओह! तब का चला यह चक्कर आज तक है—बहूजी हर साल गुब्बारा होती हैं और एक नया ऊनी मखमली पिण्डा तीनों महिलाओ को नजर कर देती हैं। हम हैरान हैं कि ये तो सारी कुनबा-गिनती पीले पत्तों सी है, हवा आई कि सब झरे एक एक करके, लेकिन हम कैसे सभालेंगे इस लशकर फौज को? क्या खिलायेंगे पहनायेंगे? शिक्षा कहाँ से देंगे? जमाना और भी महगा होता जा रहा है—अजी छोडिये दूध मलाई, पिस्ते-बादाम! रोटी सब्जी तक के अब तो लाले पड रहे हैं—प्याज लहसुन का बघार लगाने तक को तेल नहीं, इधर बहूजी हैं कि झरबेरी के बेरों की तरह आँगन कमरे भरे डाल रही हैं। बताइये है न परेशानी की बात! कहिये क्या करें? रोयें झींकें नहीं क्या?

हाँ इस आये दिन के हगामे तमाशे का एक खुला परिणाम हमारे लिये यह अच्छा रहा कि जिस रूप का बहूजी का घमण्ड था, वह अब नहीं रहा। रीती आँखें काला चेहरा। मोती बिंदी काजल सब भूल गई हैं—न शरीर में लचक, न आँखों में तीखी धार। ओठों पर सूखी पपडियाँ, हाथ पैरों में कमजोरी। हमेशा कच्चे घडे सी भरी रहती हैं क्योंकि एक डेढ महीना साग चपाती ढग से खा पाती हैं वरना सारा माल उबकाइयों में ही जाता है। हम? अजी हमें तो वह फूटी नजरों से भी देखना पसन्द नहीं करती हैं। क्यों क्या! समझती हैं कि हमने ही उनकी देही का प्रलोभन उठाया है। अपने कसूर की ओर तो रत्ती भर झाँककर उन्होंने देखा नहीं है कि किस तरह जजाल से मुक्त होते ही घाती ब्लाउज से मैच, पपडाये ओठों पर रग पोत तेज छुरी सी हँस पडती हैं—हम क्या करें? फिर टूटती हैं शेरनी सी—मारे खानदान पुर्खों को कोसती हैं—चुन चुन कर बुरा भला कहती हैं। हम क्या कहें। मुह फाडें, तकदीर ठोकते रह जाते हैं

इस बार आठवीं बार बहूजी का पैर भारी हुआ है, इन्होंने घर को सिर पर उठा लिया है। माँ पिताजी का या बूआ मौसी की कोई शर्म नहीं। हम तो घर हैं ही किस गिनती में ? इतनी चिड़चिड़ी हो गई हैं कि जबान हर घड़ी कैंची सी चलती रहती है। बच्चों को मारना-पीटना हर बात पर जहर छिड़कती रहती हैं। हम को ऐसी खूंख्वार नजरों से देखती हैं कि घड़ी घड़ी मर जाने की तबीयत हो उठती है। अपना कमरा हमें बड़ा गंदा और फूहड़ लगता है। बहूजी का गात दलिद्दर। हाथ पर गंद, बाल उलझे हुए। कभी कभी इन पर बड़ा तरस आता है कुछ मीठा बोलते हैं तो घूर कर लताड़ देती हैं—जाओ ये बत्तीसी किसी और को दिखाओ सारे तुम्हारे बोये बीज हैं लम्बी सी आई थी और भूतनी सी बना दी हूं। जलते थे न देखकर इसीलिये हम भूनकर रख दिया—हमारा सारा तरस गुस्से में बदल जाता है—ठीक है मेरे तुम्हारा यही होना है—और क्या करें ? घर की औरतें तो बड़ी खुश हैं। देखो वहाँ तो घर में एक आँधी थी यहाँ दुनिया भर की आँगन में ?

आज मन में कोई पक्का इरादा ठान लिया है अफसोस यही है कि यों पहले सोच लेते तो क्यों आफत में अटकते ! क्यों सुनें दिन रात जली कटी ! औलाद को भी ढंग पूरा नहीं दे पायेंगे तो ये भी यों ही कोसेंगी ?

कल इन्हीं खयालों में स्टेशन की ओर निकल गये। वहाँ मिल गये बचपन के दोस्त—मन हल्का कर दिया उन्हें पूरी कहानी सुनाकर। उन्होंने हमें अपने तजुर्बे दिये। ऊँच नीच समझाया और तरकीब भी बता दी इस नरक से छुटकारा पाने की। हमने उन्हें खूब धन्यवाद दिया और हल्के कदमों से घर में आये।

घर में घुसते ही सुना कि बहूजी बच्चों पर गर्म तेल सी खौल रही हैं—मर भी नहीं जाते कमबख्त—सारा खून पी लिया शक्लें कैसी मनहूस हैं—सब एक से एक बढ़कर बदसूरत बाप की तरह हड्डियों के ढाँचे जाने क्या क्या ! कोई सुनी कही जाती है क्या यह भाषा ? जी में तो आया कि सुना दें, लेकिन खानदान की इज्जत ने रोक लिया—भुगत तो रही हैं। उस दिन हमने बच्चों को खूब प्यार किया जो चाहा, दिलाया खिलाया बाजार घुमाने ले गये। अरे ? इन बेचारों का क्या कसूर है ? शहर में सर्कस आया हुआ था, वह भी दिखाया—आज हमारे मन में भी बड़ा चाव था किनारा सा दिखाई देने लगा था, बचाव का यही सोचते हुए खूब अच्छी तरह खाना खाया बच्चों के साथ और कल किसी पुख्ता खयाल को दिमाग में सजाकर शांति से सो गये।